किये रहते हैं और उन लोगों का बात माननेसे जगत का अमङ्गल होता हैं।

वेदादि सकल शास्त्रोंही के उद्देश्य एक है। सकल शास्त्रों को प्रतिपाद्य एकमात्र पूर्ण परब्रह्म ज्योतिःस्वरूप परमात्मा, जिन को हृदय में धारण करने से व्यवहारिक वो पारमार्थिक कार्य्य उत्तमरूप से सम्पन्न की जाती है वो आत्मा चिर शान्ति मे रहती है, ब्रह्मव्यतीत किसी को भी एक क्षण पर्य्यन्त उत्पन्न करने का सामर्थ नहीं है। ब्रह्म का आदि नहीं है, अन्त नहीं है, वो मध्य नहीं है, क्योंकि त्योंही परिपूर्ण हैं। निराकार ब्रह्म साकार जगत् स्वरूप अनादिकाल से प्रत्यक्ष विराटरूप विराजमान है। आदि में जो पृथवी थी अब भी वही पृथवी हैं। वही जल, वही अग्नि वही वायु, वही आकाश, वही चन्द्रमा, वही सूर्य्य नारायण आदि में जैसे थे अब भी वैसाही विराटरूप से विराजमान हैं। नई सृष्टि कोई भी नहीं कर सका, और सकेगा भी नहीं। जो हैं वही अनादिही से हैं, इन में नई पुराणे कुछहीनहीं। सुतरां शास्त्र का भी नई पुराणी कुछ भी नहीं है, सार वस्तु सत्य को ग्रहण करना होता है।

देखिये जैसे पूर्व्व में हमलोग एक राजा के प्रजा थे, वह इच्छा मत हमलोगों पर राजदण्ड चलाया करते थे, उनके राज्यावसान में हमलोग इस समय और एक राजा के शासन में हैं। इस समय यदि हमलोग बोलें कि, यह राजा को न मानेंगे तो यह हमलोगों का बात नहीं सुनेंगे, जो किसी प्रकार से होवे नक्यों हमलोगों को शासन में रखेंगे। यहां पर यह समुझना उचित है कि यही राजा नया नहीं हुये, आगे राजा वस्तु थे, फिर अबही राजा हुये हैं।

कोई पुत्र कन्या को बोलना उचित नहीं है कि, प्रपितामह मर गये, वह पुराणे हैं उन्ही को मानेंगे, पितामह नये हैं इन को न मानेंगे। यह जो कितनी बड़ी भूल वो अन्याय है, वह कही

नहीं जाती। सकल पुत्र कन्या को समझना उचित है कि यही पितामह आदि में थे वही अब आये हैं, यदि आदि में नहीं रहते तो अबही नहीं आते। पितामह को अपमान करने से प्रपितामह को अपमान करना होता है। साकार विराट ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म को अपमान करने से निराकार ब्रह्म का अपमान होता है, और निराकार ब्रह्म को अपमान करने से साकार ज्योतिःस्वरूप माता पिता का अपमान करना होता है। इसी प्रकार से वेदादि शास्त्र प्रभृत्ति के सार भाव को बिचार पूर्व्वक ग्रहण करके परमानन्द में आनन्दरूप रहिये।

ओं शान्तिः ओं शान्तिः ओं शान्तिः॥

वेद पढ़ने में अधिकार।

कोई कोई सामाजिक हिन्दू शास्त्र में लिखा है कि वेद पाठ ओंकार मन्त्र वा ब्रह्मगायत्री के जप वो स्वाहा बोलकर अग्नि में आहुति देने का अधिकार शूद्र वो स्त्रीलोगों का नहीं है। परन्तु आपलोगोंने गम्भीर वो शान्त चित्त से अपने अपने मान, अपमान, जय, पराजय वो सामाजिक मिथ्या स्वार्थ परित्याग करके बिचार पूर्व्वक इस विषय के सारभाव को ग्रहण करिये, जिस से सर्व्व अमङ्गल दूर होकर जगत् का मङ्गल होवे। जिन के घर में अन्धकार है, उन्हीं को अग्नि का प्रयोजन है, जिन के अन्धकार नहीं है, उन को अग्नि ज्योतिः का प्रयोजन नहीं है। तैसेही जिस पुरुष में अज्ञानता है उसी पुरुष को ज्ञानरूप प्रकाश का प्रयोजन है। वेदशास्त्र के पाठ, ब्रह्मगायत्री वो ओंकार मन्त्र के जप वो अग्नि में आहुति देने का जो विधि है, वह अज्ञान अवस्थापन्न

मनुष्यलोगों के लिये है, जिस में उनलोग अज्ञान से मुक्त होकर ज्ञान मुक्तिस्वरूप परमानन्द में आनन्दरूप रह सकें, यही अभिप्राय है।

ज्ञानवान मनुष्य के लिये वेदशास्त्र के पाठ, ब्रह्मगायत्री वा ओंकार मन्त्र के जप करना प्रयोजन नहीं है। केवल शास्त्र पढ़नेही से जो प्रकृत ज्ञान होता है वह नहीं। अज्ञान अवस्थापन्न शास्त्रज्ञ मनुष्यलोगोंनेही न समुझ कर कहा करते हैं कि, शूद्र वो स्त्रीलोगों का ओंकार वो ब्रह्मगायत्री के जप वो स्वाहा बोल कर अग्नि में आहुति देने का अधिकार नहीं है। वेदशास्त्र का पढ़ना ज्ञान विस्तार के लिये है। ज्ञान विस्तार अज्ञान लय करने के लिये है। अतएव वेदपाठ अज्ञान मनुष्य के लिये है। शूद्र की अर्थ अज्ञान। अतएव वेदपाठ शूद्र के लिये है। ज्ञान शिक्षा ज्ञानी के लिये निष्प्रयोजन है। ब्राह्मण अर्थ ज्ञानी। अतएव ब्राह्मण के लिये ज्ञानशिक्षा अर्थात् वेदपाठ निष्प्रयोजन है। यदि शास्त्र अनुसार से बिचार करके देखिये, तो जानेंगे कि, स्त्री वो शूद्रलोगों का सब्बं विषयों में अधिकार है। कारण शूद्र अज्ञान अवस्थापन्न को कहते हैं, वो ब्राह्मण ज्ञानअवस्थापन्न को कहते हैं। शास्त्रमें किस को ब्राह्मण कहतेहैं ? को ब्राह्मणः ?— ब्रह्मवित् स एव ब्राह्मणः। अर्थात् जो ब्रह्म को जानते हैं, वही ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण वो ब्रह्म एकही अवस्था का नाम है। "ब्रह्म विद ब्रह्मइ भवति" अर्थात् जिनलोग ब्रह्म को जानते हैं वही ब्रह्म हैं। अतएव विचार करके देखिये केवल ब्रह्मप्राप्ति अर्थात् ब्रह्म को जानने के लियेही वेदपाठ वो ब्रह्मगायत्री वा ओंकार मन्त्र जप करने का प्रयोजन है, नहीं तो दूसरा कोई भी प्रयोजन नहीं है। जिनलोग ब्रह्म को जानते हैं वही ब्राह्मण हैं, उन को वेद, ब्रह्मगायत्री वा ओंकार मन्त्र के जप करने का कोई भी प्रयोजन नहीं है। परन्तु जो लोग ब्रह्म को नहीं जानते हैं

वही अज्ञानी हैं उन्ही में शूद्र संज्ञा होती है। उन्ही का ज्ञान मुक्ति अर्थात् ब्रह्मप्राप्त की लियेही वेदपाठ, ब्रह्मगायत्री ओंकार मन्त्र के जप, सूर्य्यनारायण में ध्यान, वो अग्नि में आहुति देने का प्रयोजन है। और वही इन का अधिकारी हैं। यह भी सब कोई को समुझ के देखना उचित है कि शूद्र, स्त्री किस को कहते हैं यदि स्थूल शरीर अर्थात् हाड़ मांस वो इन्द्रियादि को शूद्र, स्त्री वा ब्राह्मण कहिये तो सब किसी का स्थूल शरीर हाड़ मांस इन्द्रियादि शूद्र, स्त्री वो ब्राह्मण होंगे, और यदि आत्मा को शूद्र, स्त्री वा ब्राह्मण कहिये तो सब का आत्माही शूद्र, स्त्री वा ब्राह्मण होंगे। जितने दूर पर्य्यन्त जीव का बोधाबोध वा मन का गति है और जिस के द्वारा बोधाबोध होता है, शास्त्र में उन को प्रकृति शक्ति स्त्रिलिङ्ग कहते है। जिस भाव में बोधाबोध वो मन के गति नहीं है अर्थात् जो प्रकृति और शक्ति के अतीत है, उन्ही को शास्त्र में चैतन्य या पुरुष कहते हैं। अतएव शक्ति न रहने से पुरुष अनधिकारी है, कारण उन से कोई कार्य्य भी नहीं होता है, और स्त्री अधिकारी हैं, कारण प्रकृति वा शक्ति रहने से कार्य्य होता है। स्वरूप पक्ष में स्त्री वो पुरुष कारण परब्रह्मही हैं, कारण परब्रह्म से पृथक कुछ भी नहीं है। अतएव मनुष्य मात्रही ज्ञान, मुक्ति अर्थात् ब्रह्मपद प्राप्ति के लिये उपर लिखे हुए कर्म्म करने का अधिकार वो विधि है, उस में कोई सन्देह नहीं है। यह भी शास्त्र में लिखा है। कि:—

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात्द्विजोच्यते।
वेदाभ्यासात् भवेद्विप्रो ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः॥

इस के अर्थ यह है कि, जब जीव, माता पिता के रजः वीर्ज से उत्पन्न होता है, तब उसी जीव को शूद्र कहते हैं, कारण उसी अवस्थामें बोध नहीं रहता कि हम या ब्राह्मण कौन वस्तु हैं।

और जब वही शूद्र जीव को परमेश्वर सम्बन्ध में सत्संस्कार होता, तब वही जीवकी द्विज कहा जाता है। द्विज अर्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और जब वही जीव वेद पढ़कर इन्द्रियों को परिशुद्ध करते हैं और परमात्मा में निष्ठावान होते हैं, तब उन का नाम विप्र होता है। विप्र अर्थात् जिन के तेज, बल, ज्ञान, वो शान्ति है।) और जब वही जीव ब्रह्म को जानते अर्थात् वही जीवात्मा परमात्मा के सङ्ग एक, वो अभिन्न होते हैं, उसी अवस्था में उन को ब्राह्मण कहा जाता है। और भी लिखा है।—

> शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रतां।
> क्षत्रियाः जातमेवन्तु विद्यात वैश्यास्तथैव च ॥

इस की तात्पर्य्य यह है कि शूद्र, वैश्य, वो क्षत्रिय जो कोई श्रेष्ठ कार्य्य करेंगे, वही ब्राह्मण होंगे। और ब्राह्मण कुल में जन्म ग्रहण करके यदि निकृष्ट कार्य्य करें तो वही मनुष्य शूद्र होंगे। श्रीमद् भागवत में लिखा है यथा:—

> विप्राद्विषड़्गुणयुतादरविन्दनाभ
> पादारविन्द विमुखात् श्वपचो वरिष्ठः।
> मन्ये तदर्पित मनोवचने हितार्थं
> प्राणं पुनाति सकुलं नतु भुरिमानः ॥

इस की तात्पर्य्य यह है कि, विप्र जो ब्राह्मण हैं वह यदि ज्ञान, सत्य, दम, शास्त्रज्ञान, अमात्सर्य्य, लज्जा, क्षमा, क्रोधशून्यता, यज्ञ, दान, धैर्य्य, सम—यही बारह गुणसम्पन्न होयें, और विष्णुभगवान में अर्थात् पूर्णपरब्रह्म ज्योतिःस्वरूप आत्मा गुरु में निष्ठा भक्ति युक्त न होंये, तो वह चण्डाल से भी अधम है। पृथिवी भी उन की भार, सह्य नहीं कर सकी और जो चण्डाल होकर भी अपने तन, मन, वो धन इत्यादि विष्णु भगवान में अर्थात् पूर्ण परब्रह्म ज्योतिःस्वरूप गुरु आत्मा में प्रेम भक्ति के साथ अर्पन करें तो

वही मनुष्यही यथार्थ ब्राह्मण वो वही श्रेष्ठ और वही सर्व्व विषयों में अधिकारी हैं। वह अपने को और अपने कुलों को पवित्र करके जगत का मङ्गल करते हैं। पृथिवी भी उन के गुणों से प्रसन्न होकर उन को वहन करने में आनन्द पाते हैं।

यजुर्व्वेद मे लिखा है—

यथेमां वाचं कल्याणि मावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याः शूद्रायचार्य्याय चस्वायचारणाय॥
अध्याय २६। २।

इस के भावार्थ यह है कि, मैं अर्थात् ब्रह्म यह जो कल्याणकर वाक्य कहता हूं इस्को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र प्रभृति सब कोई ग्रहण करेंगे अर्थात् सब कोई वेद पढ़के वेद के सार भाव को ग्रहण करके श्रेष्ठ कार्य्य करेंगे।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वो शूद्र और शूद्र से भी अति शूद्र चण्डाल प्रभृति स्त्री वो पुरुष सब कोई वेद वो शास्त्रादि पढ़ के उस्के सार भावार्थ को ग्रहण करेंगे, व्यवहारिक वो पारमार्थिक दोनों विषय में श्रेष्ठ कार्य्य करेंगे, इस में कोई बाधा नहीं है। और ओंकार मन्त्र के जप वो ब्रह्मगायत्री अर्थात् पूर्णपरब्रह्म ज्योतिःस्वरूप आत्मा गुरु को उपासना करेंगे। उन को जानने के लिये जो ज्ञान उपार्ज्जन करते हैं, उसी को वेद का पढ़ना कहा जाता हैं अर्थात् ज्ञानही का नाम वेद है! जो शास्त्रमें सत्य वाक्य है और जो सत्य बोलते है उन्हो को वेद जानेंगे। वही एक अद्वितीय ज्ञान आपलोगों के भीतर बाहर में ज्योतिःस्वरूप परिपूर्ण रूप से विराजमान हैं। ऐसे ही सर्व्व विषय में समुझ लेंगे।

ब्राह्मण के कर्म्म सम्बन्ध में और भी लिखा है:—कि यजन, याजन, अध्यान, अध्यापन, दान, वो प्रतिग्रह। इस के भावार्थ यह है कि ब्राह्मण अपने उत्तम श्रेष्ठ कार्य्य को करेंगे, वो श्रद्धा भक्ति पूर्व्वक ईश्वर को उपासना करेंगे और अपर सर्व्व साधारण

स्त्री वो पुरुष से उत्तम कार्य्य को करावेंगे। आप वेद शास्त्र को पढ़ेंगे, अपर सर्व्व मनुष्यों को पढ़ावेंगे, आप सर्व्व से दान लेंगे, और सर्व्व को दान देंगे। यही यथार्थ ब्राह्मण का कर्म्म है, और यही शास्त्र का उद्देश्य है। आज काल के नाम धारी ब्राह्मण लोग आप उत्तम श्रेष्ठ कर्म्म को नहीं करते, वो अपर लोगों को भी उत्तम श्रेष्ठ कर्म्म को करने नहीं देते। आप भ्रष्ट वो तेजहीन हुये रहते, और अपरलोगों को भी भ्रष्ट वो तेज-हीन करते हैं। उन लोग विचार पूर्व्वक ये नहीं देखते, कि एक माता पिता के यदि दश पुत्र कन्या होंवे, और दशो पुत्र कन्या अपने माता पिता को नाम धर कर श्रद्धा भक्ति को करें वा आज्ञा पालन करें तो माता पिता प्रसन्न होंगे; अथवा अप्रसन्न होंगे, वरं प्रसन्नही होंगे वो पुत्र कन्या को सर्व्वदा मङ्गल चेष्टा करेंगे। और सुपात्र ज्ञानवान, पुत्र, कन्या सुन कर वा देख कर प्रसन्न होंगे कि हम लोग भाई बहिन मिल जुल करके अपने माता पिता को नाम धरके श्रद्धा भक्ति वा आज्ञा पालन करते हैं। किन्तु अज्ञान अवस्थापन्न पुत्र कन्या निज में अपने माता पिता को श्रद्धा भक्ति वा आज्ञा पालन नहीं करते, और अपरापर को भी करने नहीं देते। पुत्र कन्या शब्द चराचर आप लोगों स्त्री पुरुष वो माता पिता शब्द निराकार, साकार, अखण्डा-कार असीम अर्थात् पूर्ण परब्रह्म ज्योतिःस्वरूप ही सब कोई का माता पिता वो आत्मा हैं, और इन्हीं के नाम ओंकार मन्त्र है। सकल मनुष्यमात्रही क्या स्त्री क्या पुरुष इन को श्रद्धा भक्ति पूर्व्वक ओंकार मन्त्र के जप वो वेद शास्त्र के पाठ, अग्नि में आहुति, और विराट ज्योतिः के सम्मुख प्रणाम करने का अधि-कार है।

ओं शान्तिः। ओं शान्तिः। ओं शान्तिः॥

परमार्थ में अधिकारी अनधिकारी।

पारमार्थिक विषय में किस के अधिकार, किस के अनधिकार कल्पित होकर नाना अमङ्गल उत्पन्न हुई है। कोई एक नाम से परमात्माको पुकारते हैं, कोई दूसरा नाम से। कोई एक प्रकार रूप कल्पना करते हैं कोई दूसरा प्रकार। जो जिस नाम रूप अवलम्बन करके उपासना करते हैं वह दूसरा नाम निर्द्दिश के साथ एकमत होने नहीं सक्ते। दोनोंही विवाद अशान्ति में दिन गवाते हैं। जिन को जो क्रिया में संस्कार पड़ा है वह उसी क्रिया में है, जिन लोग का अधिकार कल्पित नहीं हुआहै उन लोगोंको नास्तिक, पाषण्ड अधार्म्मिक बोध करते हैं। लाभों में परस्पर द्वेष, हिंसा के बश सब कोई भ्रष्ट भ्रष्ट होके नाना दुःख भोग करते हैं इस्को मूल कारण है अधिकारी अनधिकारी कल्पना। परन्तु सभी का सत्पन्थ एक सिवाय बहुत नहीं है। ऐसे धारणा करने से अथवा सत्पन्थ में चलनेसे सभी सुख शान्ति में जिन्दगी निर्व्वाह कर सकेंगे।

अतएव बिचार करके देखिये कि, पारमार्थिक विषय में अधिकार अनधिकार स्वार्थ वो पक्षपात परायण मनुष्य का कल्पित है या ईश्वर निर्द्दिष्ट है। परमेश्वर जो जीव को जो अधिकार दिये हैं उस्को कोई मत में कोई दूसरा नहीं कर सक्ते। जैसे जलचर को जल में रहने का अधिकार है, और खेचर जीव का आकाश में उड़ने का अधिकार है। लाख जतन करने से भी खेचर जीव जलचर नहीं होंगे। ऐसेही बिचार पूर्व्वक सब विषयों में ईश्वर दिये अधिकार समुझेंगे।

परमेश्वर जिन को जो विषयों में अधिकारी किये हैं उन को वह विषय का कोई भी प्रयोजन नहीं रहता। जैसे खेचर जीवों का जल में रहना अनधिकारी भी है और निष्प्रयोजन भी है

और वह अनुधिकारी के वश होकर करना कोई हानी लाभ नहीं है। ईश्वर निर्दिष्ट अधिकार या अनधिकार के विषय में विधि निषेध का स्थान नहीं है। विधि देने से भी अनधिकार अधिकार नहीं होगा, निषेध करने से भी अधिकार अनधिकार नहीं होगा। ईश्वर निर्दिष्ट अग्नि का जो प्रकाश गुण है, मनुष्य के विधि निषेध से उस का कोई व्यतिक्रम नहीं होगा। ऐसाही सर्व्वत्र समुझेंगे।

परन्तु धर्म्म अथवा ईश्वर विषय में अधिकार अनधिकार नहीं रह सक्ता क्योंकि उनी से सभी का प्रयोजन है। उन को त्याग करने से किसी का भी हित नहीं होता है। इस लिये उन के विषय में सब का अधिकार है। और एक बात स्थिर भाव से समुझेंगे। आपलोगों का मनुष्य व्यवहार में अधिकार अनधिकार किस से घटता है? आपलोग का स्वार्थ है कहकरही अधिकार वो अनधिकार बोध होता है। आप मन में करते हैं कि, यह क्षेत्र या यह बागिचा आप का अपना है, परमात्मा का या दूसरा किसी का नहीं है। इस के फल भोग करने का आपही का अधिकार है दूसरे का नहीं है। परन्तु इस जगत में कौन ऐसा है कि उन को ईश्वर में स्वत्त्वाधिकार जम्मा सक्ता है? क्या उन को कोई ठीका बन्दोबस्त कर लियाहै जो उनके बिना हुकुम से दूसरा कोई ईश्वर के निकट जा नहीं सकेंगे?

ऐसे स्वार्थ के वश होकर आप लोग जो क्षेत्र या बागिचा अपना कहकर जानते हैं उसीमें जल देते हैं। परन्तु ईश्वर के आत्मा में भेद नहीं है। वह जब जल वर्षण करतेहैं तब सर्व्व स्थानहीं में करते हैं। ऐसेही समदृष्टि सम्पन्न ज्ञानवान मनुष्य जिसे से सब कोई परमानन्द प्राप्ति होवे वही उद्देश्य सो पुरुष मनुष्य मात्रही को अपना या परमात्मा का स्वरूप जान कर निःस्वार्थ भाव से सत्पन्थ में ले जाने में यत्न करते हैं किसी को

भी सत् से विमुख नहीं करते वह जानते हैं कि, वेद वा धर्म्म वा ओंकार मन्त्र अर्थात् पूर्ण परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप परमात्मा सभी का समान हैं। वही सब कोई का आत्मा और प्रिय हैं, उन में किसी का भी अनधिकार नहीं है।

ईश्वर या ज्ञानवान मनुष्य सर्व्व साधारण का हित के लिये शास्त्र रचना करते हैं और सदुपदेश देते हैं, विशेष किसी के लिये नहीं। जो शास्त्र या उपदेश इन के बिपरीत लक्षण देखेंगे, उनके कर्त्ता ईश्वर या समदृष्टि सम्पन्न ज्ञानी नहीं हैं स्वार्थी मनुष्यों से उस का उत्पत्ति है। यह ध्रुव सत्य है।

चिन्ता करके देखिये एक माता पिता के दश पुत्र कन्या में सब कोई यदि श्रद्धा भक्ति पूर्व्वक माता पिता को आज्ञा पालन करें, या उन को माता पिता बोल कर पुकारें, उस से माता पिता प्रसन्न होकर पुत्र कन्याको मङ्गल साधन करतेहैं या असन्तुष्ट होकर उन लोग को दण्ड देते हैं? ज्ञानवान पुत्र कन्या यह देख कर अधिक आनन्दित होतेहैं कि, "हमलोग सब भाई बहिन मिल कर श्रद्धा भक्ति पूर्व्वक अपना माता पिता का आज्ञा प्रतिपालन वो नाम उच्चारण करते हैं। केवल कुपुत्र पुत्र कन्याही आप भी ऐसा नहीं करते और दूसरे को भी करने में मना करते हैं। पुत्र कन्या रूपी आपलोग जगत के स्त्री पुरुष हैं। वेद माता पिता ओंकार मन्त्र अर्थात् साकार, निराकार परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप विराट पुरुष माता पिता हैं। इन्ही विराट पुरुष ओंकार से समस्त जगत् को स्त्री पुरुष के स्थूल सूक्ष्म शरीर गठित होकर ओंकार रूपही रहे हैं और अन्त में उन्ही में लीन होकर फिर प्रकाश पाते हैं। ऐसेही नियम अनादि काल से चला आता है। आपलोग जगद्वासी स्त्री पुरुष सब कोई श्रद्धा वो भक्ति पूर्व्वक जगत् के माता पिता ज्योतिः स्वरूप विराट पुरुष का आज्ञा पालन करेंगे और "ओं सत्‌गुरु" यही मन्त्र जो उन का नाम हैं वह सर्व्वदा

अधिकारी अनधिकारी विषय में दो भाव को त्याग कर के प्रीति पूर्व्वक जपेंगे। वह मङ्गल मय सर्व्व विषय में मङ्गल करेंगे।

रामचन्द्र शुद्र तपस्वी का वध।

राम चन्द्र अथवा ईश्वर ने शुद्र तपस्वी को हत्या करके मनुष्य को अकाल मृत्यु से रक्षा करते हैं। इस के यथार्थ भाव न समुझ के अज्ञानान्धलोगोने स्वार्थ के वश सत्य से भ्रष्ट होकर नाना कष्ट भोग करते हैं। यहां पर मनुष्य मात्रही को बिचार पूर्व्वक समुझना उचित है कि, एक पक्ष में हिन्दु आर्य्यलोग राम चन्द्र को पूर्ण परब्रह्म बोलकर मान्य करतेहैं और दूसरे पक्षमें उन्हीको कहते कि राम चन्द्र शुद्र ज्ञान् से तपस्वी को वध किये; उस से देश में अकाल मृत्यु बन्द हुआ। और भी कहते कि, वह सेतबन्ध रामेश्वर में शिव लिङ्ग स्थापन किये, सीता देवी के लिये रोदन वो श्राद्धादि किये थे।

यहां पर बिचार पूर्व्वक देखना उचित है कि, जो पूर्ण परब्रह्म शुद्र संज्ञा क्या उन के अन्तर्गत नहीं है। एक पूर्ण या सत्य के सिवाय द्वितीय सत्य शुद्र उन के अन्तर्गत या बाहर में कहां से आया? यह ज्ञान राम चन्द्र का क्या नहीं था, जो हमारही कल्पित नाम शिव अथवा स्त्री पुरुष जीव समस्तही का शिवलिङ्ग है? कारण लिङ्ग, सूक्ष्म लिङ्ग, स्थूल लिङ्ग, स्त्री पुरुष जीव समस्त चराचर को लेकर अनादि पूर्ण लिङ्ग हैं जिन के उद्देश्य में चितिमूर्त्तय नमः इत्यादि मन्त्र पढ़ते हैं उन को क्या वह चिन्हते नहीं कि सेतबन्ध रामेश्वर में अष्ट धातु से निर्म्माण करके शिव-लिङ्ग पूजा करेंगे? सती सीता सावित्री जगत् जननी सृष्टि पालन संहार करनेवाली परब्रह्म के स्वरूप परब्रह्म के भीतर बाहरे सर्व्वत्र पूर्णरूप से बिराजमती हैं, यह ज्ञान, क्या उन का

नहीं था ? वह क्या नहीं जानते हैं कि शक्ति छोड़ के परब्रह्म नहीं है वो परब्रह्म छोड़ के शक्ति नहीं है ? परब्रह्मही शक्ति वो शक्तिही परब्रह्म हैं, जिन के चराचर कोई स्थान में खण्ड नहीं है। उन के अतिरिक्त द्वितीय सत्य नहीं है जो एक राम चन्द्र सत्य हैं, दूसरा ब्रह्म सत्य है, तीसरा उन का शक्ति सती सीता सत्य हैं और चौथा रावण वो सीता हरण सत्य होगा। इस विषय में राम चन्द्र का क्या ज्ञान नहीं था, कि वह सीता के लिये वह रोदन किये थें ? सत्य के लिये सत्य रोदन किया था ? न मिथ्या के लिये मिथ्या रोदन किया था ? वह सत्य परब्रह्म होय तो यह सब कार्य्य अज्ञान स्वार्थपर लोगों के द्वारा कल्पित रचना जानेंगे। राम चन्द्र कभी भी ऐसा अज्ञान के कार्य्य नहीं करते, नहीं करेंगे यह असम्भव है ? यह समदर्शी ज्ञानवान मनुष्य का कार्य्य नहीं है। यदि वह ऐसा किये रहे तो यह निश्चित है कि, वह अवतार पूर्ण पर-ब्रह्म, समदर्शी या ज्ञानी नहीं थें। वह मूर्ख जीव संज्ञक हो कर मूर्ख के सदृश कार्य्य किये थें। परब्रह्म के उत्पन्न सामान्य मनुष्य समदर्शी ज्ञानी ऐसे कार्य्य कभी भी नहीं करेंगे न वो यह समस्त बातों में विश्वास पर्य्यन्त नही करेंगे। क्योंकि वह जानते हैं कि, समस्तही अपने आत्मा परमात्मा का स्वरूप है।

वह स्वयं परब्रह्म होकर किस प्रकार से ऐसे अज्ञान का कार्य्य करेंगे ? समदर्शी ज्ञानी यदि जीव बध करे तो जीव समूह को समभाव से बध करेंगे वो यदि रक्षा करें तो समभाव से अपने आत्मा परमात्मा के स्वरूप जान के रक्षा करेंगे। वह ज्ञान नेत्र से देखेंगे, जैसे कोट कोट पिपड़े को बध करने से पाप पून्य होता या नहीं होता है, तैसेही ब्राह्मण सन्यासी गुरु के गुरु कोट कोट बध करने से भी होता या नहीं होता है। क्योंकि जीव समुह चेतन है, आत्मा परमात्मा की स्वरूप है।

रामचन्द्र के विषय में कोई अज्ञानान्ध मनुष्य अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये उपरोक्त भाव से लिखे हैं। अभिप्राय यह है कि, लोगों जानेंगे कि, जब इतने बड़े अवतार होकर तपस्वी शूद्र को बध किये हैं तब हमलोग भी शूद्र के उपर ऐसे व्यवहार करेंगे।

आधुनिक कोई शूद्र यदि सत्य धर्म्म में निष्ठावान होकर श्रेष्ठ कार्य्यं करें तो ज्ञान लाभ से मुक्त स्वरूप होकर स्वाधीन होंगे। तब ज्ञान नेत्र से देखेंगे कि, हमलोग शूद्र नहीं हैं। हमलोग परब्रह्म से हुए हैं परब्रह्महो का स्वरूप हैं शूद्रादि नाम कल्पना मात्र है। स्त्री, पुरुष मनुष्य में जो समदर्शी ज्ञानी हैं, वही ब्राह्मण आर्य्य, श्रेष्ठ, पवित्र हैं, और जो जो पुरुष सत्यसे विमुख हैं वही परनिन्दुक, प्रपञ्ची, अज्ञानावस्थापन्न शूद्र अनार्य्य जानेंगे। ऐसेही समुझ के आध्यात्मिक दृष्टि से भाव ग्रहण करिये। समदर्शी रामचन्द्र, पूर्ण परब्रह्म ज्ञानद्वारा अहंकार प्रपञ्च स्वार्थ परता परनिन्दा अज्ञान-शूद्र संज्ञक तपस्वी को बध करके जीव ब्रह्म मे भेद रूप मृत्यु से जीव को रक्षा करते हैं अथवा किये थे।

ओं शान्तिः। ओं शान्तिः। ओं शान्तिः।

ब्रह्मचर्य्य किसको कहते।

सर्व्वदा ब्रह्महो में आचरण करना अर्थात् निराकार साकार अखण्डाकार परिपूर्णरूप से तेजोमय परमात्मा को अन्तर औ बाहर में प्रेम भक्ति के सहित धारण करने का नाम ब्रह्मचर्य्य।

प्रथम अवस्था में रेतः अर्थात् वीर्य्य धारण न करने से ब्रह्मचर्य्य सिद्ध नहीं होता है। वीर्य्य अनर्थक परित्याग करने से स्थूल शरीर दुर्व्वल औ मन, निस्तेज हो पड़ता है, व्यवहारिक औ पार-

मार्थिक कार्य्य उत्तमरूपसे समुझकर रीतिमत सिद्ध करनेका समर्थ अथवा परमात्मा में प्रेम वो भक्ति नहीं रहती, सर्व्वदाही असत पदार्थ में चित्त आसक्ति जन्मता, और उत्साह भङ्ग होता है। मनुष्यमात्रही जानते है कि, वीर्य्य का धर्म्मही सुख प्रदान करना, इन को अनर्थक नष्ट न करके यत्न पूर्व्वक रक्षा करने से स्थूल शरीर वो मन के कितने शक्ति, तेजो, बुद्धि, और शान्ति सुख पाते हैं। समुझ के देखिये जब वीर्य्य पतन होता है, तब वीर्य्य जैसा बोल के जाता है कि, "हे मनुष्य हमारा धर्म्मही सुख प्रदान करना, इस लिये यदि भी आप मुझ को त्याग करते हो तोभी मैं आप को सुख दिये जाते हैं, यदि आप मुझ को रक्षा करते तो मैं आप को सर्व्वदाही सुख देते।" जैसे वृक्ष का धर्म्म, छाया वो फल प्रदान करना, वृक्ष को नष्ट करने के समय भी छाया वो फल को प्रदान करते हैं, परन्तु इन को रक्षा करने से सर्व्वदा कितने छाया वो फल लाभ होता है। वैसेही वीर्य्य रक्षा करने सें परमानन्द में आनन्द पा सक्ते हैं। नतो जैसे वृक्ष को नष्ट करने से छाया वो फल को आशा नहीं किया जाता। तैसेही वीर्य्य वृथा नष्ट करने से परमानन्द पाने का सम्भावना नहीं है।

अतएव मनुष्यमात्रही इसके सारभावको समुझके चलना कर्त्तव्य है वो अपने अपने पुत्र कन्या को ऐसेही सत्य शिक्षा देना उचित है। जिस से सब कोई वीर्य्य रक्षा करके व्यवहारिक वो पारमार्थिक कार्य्य उत्तमरूप से निष्पन्न करें वो परमानन्द में आनन्द रूप रह सकें।

गृहस्थलोगोंने यद्यपि ईश्वरके नियमानुसार से सन्तान उत्पत्ति के लिये एक महिना या एक पक्ष या अन्ततः एक सप्ताह बाद वीर्य्य त्याग करें, और परमात्मा में प्रेम भक्ति रखें, तो उन लोग के ब्रह्मचर्य्य नष्ट नहीं होता है। स्वप्न अवस्था में यदि वीर्य्य नष्ट

होवे तो भी भला है, उस में इतना हानी नहीं है। परन्तु निष्प्रयोजन सर्व्वदा वीर्य्य नष्ट करना नितान्त अकर्त्तव्य है। ऐसे नियम से ब्रह्मचर्य्य पालन वो परमात्मा का उपासना करने से गृहस्थ में रह कर भी गृहस्थ लोगों का पक्ष में गार्हस्थ्य, ब्रह्मचर्य्य, बानप्रस्थ, वो सन्यास यह चारो धर्म्म का सिद्धि होता है। सकल आश्रमों में गृहस्थाश्रम श्रेष्ठ है, गृहस्थ धर्म्मही सकल धर्म्म के आश्रय है।

जब मनुष्य का ज्ञान अर्थात् स्वरूप बोध वो समदृष्टि होगा तब वह स्वयं विचार पूर्व्वक इच्छानुसार से व्यवहारिक वो पारमार्थिक कार्य्य करेंगे, वो करावेंगे। उसी मनुष्य के चरण धुरि से समस्त जगत् पवित्र होगा। उन के पक्ष में कोई विधि निषेध नहीं है।

कामना भस्म।

कामना वो वीर्य्य अर्थात् मन के चञ्चलता और काम परमात्मा की वो उपासना के द्वारा भस्म होता है। इस से कोई स्थूल पदार्थ ही अग्नि व्यतीत भस्म नहीं होता, और अग्नि सब पदार्थ को भस्म वो अपना रूप करके निर्व्वाण होने से और नाना प्रकार पदार्थ नाम, रूप, गुण क्रिया नहीं रहती। वैसेही पूर्ण परब्रह्म ज्योतिःस्वरूप अर्थात् विराट ब्रह्म चन्द्रमा, सूर्य्यनारायण ज्योतिः स्वरूप जगत् गुरु माता पिता आत्मा को भक्ति पूर्व्वक धारण करने से सभी का मन के बिकार वो वीर्य्य आदि भस्म होकर मन शान्त होता है। जीवात्मा परमात्मा के सहित अभेद होकर परमानन्द में आनन्दरूप रहते हैं। यही ज्योतिः स्वरूप, गुरु, माता, पिता, आत्मा, ज्ञान ज्योतिः सिवाय काम वो अज्ञानता कभी

ही दूसरे किसी उपायों से भक्ष्म नहीं होता। यह हम निश्चयही जानेंगे।

मनुष्य लोगों पर ईश्वर का आज्ञा।

मनुष्य मात्रही को विचार करके देखना उचित है कि, गृहस्थ धर्म्म में रह कर ज्ञान होता है या नहीं। केवल मस्तक मुण्डन वो नाना भेख धारण करके बन में जानही से क्या ईश्वर प्रसन्न होके ज्ञान वो मुक्ति देते हैं? वह कभी नहीं वरं विपरीत होता है नीचे लिखे दृष्टान्त से विचार पूर्व्वक इस के सारभाव ग्रहण करिये।

राजा बागिचा में एक माली रख कर उन को आज्ञा दिया कि तुम इस बागिचा को खुब अच्छी तरह यतन पूर्व्वक रचनाविचन करोगे तो तुम को समय में पेनसन देंगे। यदि माली राजा का आज्ञा पालन अर्थात् बागिचा को नियम मत उत्तम रूप से परिस्कार रचनाविचन न करे और बैठ बैठ के राजा का नाम धरके प्रभु प्रभु बोल कर पुकारे तो क्या राजा माली के उपर प्रसन्न होके पेनसन देंगे? वह कभी भी सम्भव नहीं है वरं उन का आज्ञा लङ्घन के लिये माली को दण्ड देंगे। यदि माली राजा के आज्ञानुसार बागिचा उत्तम रूप से रचानाविचन करें वो भक्ति पूर्व्वक उन को शरणागत होवे और प्रभु के मर्य्यादा रचा करें तो राजा प्रसन्न होकर अवश्यही माली को पेनसन देंगे, जिस से माली का कोई भी विषय में कष्ट वा अभाव नहीं रहेगा। अब यहां राजा वा प्रभु रूपी पूर्ण परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप परमात्मा है। बागिचा रूपी इस माया जगत, मनुष मात्रही मालीरूपी हैं

और उन के व्यवहारिक वो पारमार्थिक कार्य्य करना उन का आज्ञा है। प्रभु रूपी भगवान के आज्ञारूप व्यवहारिक वो पारमार्थिक कार्य्य माली रूपी आप लोगों स्त्री पुरुष मनुष्य मात्रही विचार पूर्वक गृहस्थ आश्रम पालन करने से परमात्मा पेनशन रूप ज्ञान वो मुक्ति देंगे, जिस से आपलोग परमानन्द में आनन्द रूप रहेंगे और जन्म मृत्यु प्रभृति का संशय नहीं रहेगा।

यदि कोई आलस्य के वश परमात्मा का आज्ञा अर्थात् व्यवहारिक कार्य्य परित्याग करके बन में जावे परन्तु मन में तृष्णा बनी रहै, तो उन को परमात्मा का आज्ञा लङ्घन के लिये बहु काल पर्य्यन्त अज्ञानता वशतः परमात्मा से विमुख होकर कष्ट भोगना होगा। परमात्मा का ऐसी कोई भी नियम नहीं है कि, गृह में रह कर उनका उपासना करने से वह ज्ञान वो मुक्ति नहीं देंगे, और बन में जाके आड़म्बर करनेही से ज्ञान वो मुक्ति देंगे, यह निश्चयही जानेंगे। आप लोग कोई विषय में भी चिन्ता न करके गृहस्थ धर्म्म को पालन करिये और प्रेम भक्ति के सहित परमात्मा को स्मरण करिये, तो उभय कार्य्यही सिद्ध होगा। जन्म मृत्यु का संशय भी नहीं रहेगा। आपलोग अनादि काल से परमात्मा को लेकर अभेद भाव पूर्ण रूप से बिराजमान हैं किसी स्थान से आना नहीं हुआ वो किसी स्थान में जाना भी नहीं होगा, आकाशरूपी परमात्मा से हुये हो और रहोगे।

ओं शान्तिः। ओं शान्तिः। ओं शान्तिः।

आर्य्य।

विभिन्न समाज में आर्य्य शब्द का विभिन्न प्रकार का अर्थ करके नाना अशान्ति भोग करते हैं। कोई कहते हैं कि, शरीरके आकृति

विशेष संयुक्त स्त्री वो पुरुषही आर्य्य हैं दूसरा नहीं है इत्यादि। इहां स्त्री पुरुष मात्रही वस्तु विचार के द्वारा सारभाव ग्रहण करना उचित है जिस में जगत् का अमङ्गल दूर होकर मङ्गल विधान हो।

शास्त्र में वो लोग व्यवहार में दो शब्द प्रचलित है एक सत्य, एक मिथ्या। इसमें मिथ्या मिथ्याही है। जो कोई काल में नहीं है वही मिथ्या। मिथ्या कभी सत्य नहीं होता है। मिथ्या सभी के निकटही मिथ्या। मिथ्या से आर्य्य, श्रेष्ठ, धर्म्म, इष्टदेवता, जीव, जाति इत्यादि होई नहीं सक्ता, असम्भव है। और सत्य एक सिवाय द्वितीय नहीं है। सत्य कोई काल में मिथ्या नहीं होते। जो सर्व्व काल में स्वतः प्रकाश वही सत्य है। सत्य सभी के निकट सत्य हैं। सत्य से आर्य्य इत्यादि वस्तु पच में नहीं हो सक्ती हैं, असम्भव है। केवल सत्य से रूपान्तर्भेद से नानां नाम रूप आर्य्य संज्ञा प्रभृति होना सम्भव है मिथ्या से सम्भव नहीं है। आर्य्य, श्रेष्ठ, पवित्र, वृहत असीम अखण्डाकार एक सत्य अर्थात् निराकार साकार या कारण सूक्ष्म स्थूल चराचर स्त्री पुरुष को लेकर असीम अखण्डाकार सर्व्वव्यापी निर्विशेष पूर्ण रूप से विराजमान हैं अर्थात् मङ्गलकारी ओंकार विराट परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप चन्द्रमा सूर्य्य नारायण जीव समस्त को लेकर आर्य्य श्रेष्ट पवित्र वृहत असीम प्रकाशमान हैं। इन के सिवाय द्वितीय सत्य पवित्र वो श्रेष्ठ आर्य्य आकाश मन्दिर में कोई नहीं हैं, होंगे नहीं, होने का सम्भावना नहीं है। यह ध्रुव सत्य जानिगे।

इन से स्त्री पुरुष जीव समस्त के उत्पत्ति, पालन वो स्थिति है। और हम लोग इन्हीं का रूप मात्र हैं। इन्हीं स्त्री पुरुष जीव समस्त का माता पिता, गुरु, आत्मा परमात्मा हैं। हिन्दु, मुसलमान इसाई, स्त्री पुरुष में जो इन के सहित अभेद सें चिन्ह कर इन के शरणार्थी होकर क्षमा भिक्षा करते हैं वो इन के प्रिय कार्य्य साधन करते हैं वही प्रकृत आर्य्य वो श्रेष्ठ वो पवित्र हैं।

जगत को हितार्थ के लिये अग्नि ब्रह्म में आहुति देने से समदृष्टि सम्पन्न होकर जीव पालन करना वो सकल प्रकार से ब्रह्माण्ड परिस्कार रखनाही इन का प्रिय कार्य्य है। इन के प्रियकारी मनुष्य जो कुल में या राज्य या द्वीप में जन्म ग्रहण करे न क्यों वही आर्य्य श्रेष्ठ वो पवित्र हैं। जो इन के विपरीत व्यवहार करेंगे उन्हों को अनार्य्य जानेंगी अर्थात जिन को सत्य या भगवान में निष्ठा नहीं है सत्य जो क्या है, वह जिन को ज्ञान नहीं है, सत्य के जो प्रिय कार्य्य जगत के हित साधन वह जो नहीं करते हैं और जो हिंसा द्वेष, दूसरे को बुराई, परनिन्दा, मिथ्या प्रपञ्च में रत हैं वही अनार्य्य हैं उन का जो कुल में जो राज्य, जो द्वीप में जन्म ग्रहण करें न क्यों।

आर्य्य वो अनार्य्य वर्ण या जातिगत नहीं है, कार्य्यगत है। अर्थात उत्तम श्रेष्ठ गुण विशिष्ठ मनुष्यही आर्य्य हैं, इस्के विपरीत भावापन्न अनार्य्य हैं। वस्तु या स्वरूप पक्ष में स्त्री पुरुष जीव समस्त आर्य्य, श्रेष्ठ, पवित्र हैं सर्व्व विषय में ऐसाही भाव ग्रहण करेंगे।

ओं शान्तिः। ओं शान्तिः। ओं शान्तिः।

स्वधर्म्म।

"स्वधर्म्म" लेकर पण्डितलोग कितने प्रकार शब्दार्थ करते हैं उस्के अन्त नहीं है। कोई जातिगत, कोई कर्म्मगत वो कोई गुणगत इत्यादि कोई तो कहते हैं कि, हिन्दू के कार्य्य हिन्दू करेंगे, मुसलमान के कार्य्य मुसलमान करेंगे, इसाई के कार्य्य इसाई करेंगे, ब्राह्मण के कार्य्य ब्राह्मण करेंगे, क्षत्रिय के कार्य्य

क्षत्रिय करेंगे, वैश्य के कार्य्य वैश्य करेंगे, शूद्र के कार्य्य शूद्र करेंगे, डाकु के कार्य्य डाकु करेंगे, चोर के कार्य्य चोर करेंगे वो मिथ्या प्रपंची लोग के कार्य्य मिथ्या प्रपंची लोग करेंगे, तो उन लोग का जातिगत स्वधर्म्म पालन होता है, नहीं तो भय कारण है अथवा नरक में जाना होगा। यहां पर मनुष्य मात्रही अपने अपने मान, अपमान, जय, पराजय, समाजिक मिथ्या स्वार्थ परित्याग करके सारभाव ग्रहण करिये, जिस में जगत का मङ्गल होये।

मनुष्य मात्र को जो स्वधर्म्म है उसके अर्थ यही है :—"स्व" अर्थ स्वरूप "स्वधर्म्म" अर्थ सत्य परमातमा। वही सत्य परमात्मा से स्त्री पुरुष जीव समस्त उत्पन्न वा प्रकाशमान है। मनुष्य के "स्वधर्म्म" सत्य को धारण करना वा सत्य परमात्मा में निष्ठा रखना, सत्य वाक्य बोलना, सत्य व्यवहार करना, सत्य सिवाय कोई प्रकार प्रपंच न करना। जीव समस्त को अपना आत्मा परमात्मा के स्वरूप जानकर समदृष्टि से प्रतिपालन करना। यही जीव का स्वधर्म्म वो मानुषत्व है। ऐसेही करने से जीव का ज्ञान या मुक्ति होता है। इस के विपरीत अधर्म्म अर्थात् माया मिथ्या कार्य्य है। प्रपंच परनिन्दा आप श्रेष्ठ, दूसरे को निकृष्ट, शत्रु को मित्र, मित्र को शत्रु, सत्य को मिथ्या वो मिथ्या को सत्य बोध करना यही जीव का परधर्म्म या अधर्म्म है और इसी में ही जन्म मृत्यु संशय वो काल का भय रहता है।

स्त्री पुरुष मनुष्यमात्रही के स्थूल सूक्ष्म शरीर इन्द्रियादि भगवान समान भाव से रचना किये हैं, और जो इन्द्रियों के जो गुण या धर्म्म वह जीव समस्त में सम भाव से घटता है यथा :—नेत्र द्वारा दर्शन, कर्णद्वारा श्रवण इत्यादि।

जो जो इन्द्रियों के जो जो गुण या धर्म्म है सोई सोई इन्द्रियों के गुण या धर्म्म द्वारा सोई सोई कर्म्म सम्पन्न करते हैं जीवों का या इन्द्रियों का "स्वधर्म्म" है। इस के विपरित आचरण भयावह

परधर्म्म अर्थात् भय या कष्ट के कारण है। यथा :—पद द्वारा न चलकर मस्तक द्वारा चलने का चेष्टा करने से भय वो कष्ट का ठिकाना नही रहता; नेत्र द्वारा न देख कर यदि कर्ण द्वारा देखने चाहै तो कुंये मे गिर के हाथ पाँव टुटेंगा वो मृतुय में पड़ेंगे इत्यादि। इस्के नाम अधर्म्म है।

स्त्री पुरुष मनुष्य मात्रही सत्यनिष्ठा रखकर "स्वधर्म्म" रक्षा करेंगे। लौकिक जो विषय में जो स्त्री या पुरुष समर्थ हैं उन्के द्वारा सोई विषय का कार्य्य करना वो करावना कर्त्तव्य है। इस्से सहज में कार्य्य निष्पन्न होता है। जो कार्य्य में जो पुरुष समर्थ नही है उन्के द्वारा सोई कार्य्य करने जाने से उत्तम रूप से कार्य्य सम्पन्न नही होता है। क्या व्यवहारिक, क्या पारमार्थिक जो जीव का जैसा प्रवृत्ति है उनको वैसाही सत्कार्य्य करने में देना उचित है। उस्से रोकना अधर्म्म है। जिस्से अपना या दूसरे को किसो रूप कष्ट नही हो वही धर्म्म है।

ओं शान्तिः। ओं शान्तिः। ओं शान्तिः।।।

मनुष्य लोगों का आवश्यक क्या है।

मनुष्य मात्रही का दोनो विषय आवश्यक है, व्यवहारिक वो पारमार्थिक। व्यवहारिक कार्य्य में गृहस्थ लोगों का क्या करना आवश्यक है? प्रथम विद्या शिक्षा करना द्वितीय धन उपार्ज्जन करना जिस से अपना या परिवारवर्ग का या दूसरे किसीके अन्न वस्त्र प्रभृति कोई विषय में शारीरिक मानसिक कोई प्रकार भी कष्ट नही होय।

शरीर मन वो वचन से दूसरे को कष्ट निवारण करेंगे उसी से ईश्वर की आज्ञा और धर्म्म पालन होता है। जो औषध व्यवहार

करने से स्थूल शरीर का जो रोग निवारण होता हैं, उसी रोग में उसी औषधको व्यवहार करना उचित है। भगवान का जैसा नियम है। क्षुधा रोग होनेसे अन्नरूप औषध आहार करना, पिपासा रोग होने से जलरूप औषध पान करना, शीतरोग होने से वस्त्ररूप औषध द्वारा शीत निवारण करना, और अन्धकार रोग होने से अग्निरूप औषध द्वारा प्रकाश करना इत्यादि। ऐसेही विचार पूर्व्वक सर्व्व विषय में ईश्वर का अज्ञा वो नियम से कार्य्य निष्पन्न करेंगे। आपलोग का जो अङ्ग और जो इन्द्रिय जो कार्य्य के उपयुक्त है उस्के द्वारा वही कार्य्य निष्पन्न करेंगे, तो सहज में कार्य्य निष्पन्न होगा, वो ईश्वर के अज्ञा वो धर्म्म पालन होगा। यदि इस्के विपरीत करिये, अर्थात् पद से न चलकर मस्तक से चलने चाहे तो चल नहीं सकेंगे, अनर्थक कष्ट पावेंगे, और ईश्वर का अज्ञा लङ्घन के लिये अधर्म्म होगा। यदि अग्नि द्वारा प्रकाश न कर के जल या वरफ के द्वारा प्रकाश करना चाहे तो प्रकाश नहीं होगा, अनर्थक परिश्रम सार होगा। और यदि अग्नि द्वारा प्रकाश करे तो सहज ही में अन्धकार दूर होके कार्य्यसिद्ध होगा।

ऐसेही मनुष्य के परमार्थ अर्थात् ज्ञान वो मुक्ति का आवश्यक होने से उस में अर्थ वा कोई प्रकार प्रपञ्च का आवश्यक नहीं करता। केवल मन निर्द्दय वो निष्कपट होना आवश्यक है। और अज्ञान निवारण के लिये केवल मात्र ज्ञानरूपी तेजोमय ज्योतिःस्वरूप विराट भगवान का प्रयोजन है। अर्थात् भक्ति वो श्रद्धा पूर्व्वक पूर्णब्रह्म ज्योतिःस्वरूप गुरु माता पिता परमात्मा विराट चन्द्रमा सूर्य्यनारायण को मस्तक में धारण करना और इन्हीं के नाम ओंकार है; वही नाम मन्त्रको जपना, अवस्था अनुसार यथाशक्ति नित्य अग्नि में आहुति देना, जिन को आहुति देने का सामर्थ नहीं हैं उन के पक्ष में न देने से भी कोई हानी नहीं है परन्तु ईश्वर जिनको धन वो ऐश्वर्य्य दियें हैं उन्हों को आहुति देना

उचित है। उन के वस्तु उन्हीं को प्रीति वो भक्ति के सहित न देना धनि वो ऐश्वर्य्यशाली मनुष्यलोगों का उचित नहीं है, धन ऐश्वर्य्य रहते यदि जीव को आहार वो अग्नि में आहुति नहीं हैं तो उन को परमात्मा के निकट चोर बोल कर जानेंगे। और यही ईश्वर परमात्मा का मुख्य उद्देश्य है कि चेतन जीव मात्र को आहार देना वो अग्नि ब्रह्म में आहुति देना। जीव वो अग्नि चैतन्य ब्रह्म हैं, इन्हीं को आहार देने से ईश्वर को भोग वा आहार देना होता है। यदि इसीरूप न कर के वृथा आड़म्बर करें अर्थात् जड़ पदार्थ काष्ठ, मृत्तिका, प्रस्तर, गिर्जा, मसजिद वो मन्दिर में ईश्वर के नाम से वेद, शास्त्र, वाइवेल, वो कोराण प्रभृति के मन्त्र उच्चारण करके एक तोला मिसरी माखन वा हाजार मन भोग लगा कर बिश वरष वाद फिर वजन किजिये तो जैसे के वैसाही रहेगा। परन्तु चेतन जीव मात्र को आहार वा अग्नि में आहुति देने से प्रत्यक्ष भोजन कर लेते हैं। और सब कोई प्रातःकाल, मध्यान काल, वो सायं काल में श्रद्धा भक्तिपूर्व्वक निराकार साकार पूर्णरूप से विराट विष्णु भगवान चन्द्रमा सूर्य्यनारायण जगत गुरु माता पिता परमात्मा को प्रणाम करेंगे। तो वह आपलोगों का कायिक वो मानसिक सकल प्रकार दुःख अज्ञान वा ज्ञान कृत सर्व्व प्रकार पाप मोचन करके परमानन्द में रखेंगे, यह सत्य सत्य ही जानेंगे, इस में कोई भी संशय नहीं है। जैसे अग्नि ब्रह्म विष्ठा चन्दन प्रभृति सकल प्रकार स्थूल पदार्थ भस्म वो अपना रूप करके निराकार होते, ऐसेही पूर्ण परब्रह्म विराट ज्योतिः स्वरूप चन्द्रमा वो सूर्य्यनारायण जगत गुरु माता पिता सकल प्रकार पाप वो अज्ञानता भस्म और जीवात्मा वो परमात्मा को अभेद करके परमानन्द में आनन्द रूप रखेंगे, उनलोगों का और कोई भी शास्त्र वेदादि पढ़ने का आवश्यक नहीं रहेगा।

लोकाचर में प्रचलित है कि, गुरु द्वारा शिष्य का ज्ञान या

मुक्ति होता है। परन्तु मनुष्य मात्र का विचार पूर्व्वक यह समुझना उचित है कि, गुरु या शिष्य किस्को कहते हैं। गुरु जो शिष्य को कान में मन्त्र देकर मुक्त करेंगे, उन्का क्या रूप और जिन्को मुक्ति देंगे वह शिष्य का क्या रूप है? गुरु स्वयं कौन रूप होकर कौन रूपयुक्त शिष्य को मुक्ति देंगे या उन्का भ्रान्ति दूर करेंगे? गुरु वो शिष्य वो मन्त्र के रूप निराकार या साकार, सत्य या मिथ्या? गुरु मिथ्या होकर सत्य शिष्य को मुक्ति देंगे, न गुरु सत्य होकर मिथ्या शिष्य को मुक्ति देंगे अथवा मिथ्या गुरु मिथ्या शिष्य को ज्ञान या मुक्ति देंगे वा सत्य गुरु सत्य शिष्य को मुक्ति करेंगे?

यहां पर विचार पूर्व्वक समुझना होगा कि, मिथ्या मिथ्याही है। मिथ्या कभीहो सत्य नही होता है, मिथ्या सभी के निकट मिथ्या है—मिथ्या से गुरु शिष्य, उत्पत्ति लय पालन, मङ्गलामङ्गल कुछही हो नहीं सक्ती, होना असम्भव है। और यह भी जानना उचित है कि, यदि सत्य ही गुरु, सत्यही शिष्य होय तो एक सत्य सिवाय द्वितीय सत्य नही हैं। सत्य स्वतःप्रकाश, सत्य कभी मिथ्या नहीं होते; सत्य के उत्पत्ति लय प्रभृति असम्भव है, केवल रूपान्तर उपाधि भेद मात्र घटता है। वास्तव में एक ही सत्य निराकार या कारण से सूक्ष्म वो सूक्ष्म से स्थूल चराचर स्त्री पुरुष को लेकर असीम अखण्डाकार सर्व्वव्यापी निर्व्विशेष पूर्ण रूप से विराजमान हैं।

यही पूर्ण शब्द में दो शब्द कल्पित या प्रचलित है—निराकार निर्गुण, साकार सगुण। यही दोनों में गुरु स्वयं का कौन रूप वो शिष्य का कौन रूप जानके ज्ञान या मुक्ति देंगे।

आपना रूप, शिष्य के रूप वो मन्त्र के रूप उत्तम रूप से जान कार शिष्यों को सत उपदेश या मन्त्र देना गुरु का कर्त्तव्य है, जिस्में उन्का ज्ञान या मुक्ति होय। यदि गुरु ये सब न जान कै स्वार्थ

के वश कहते हैं कि, मैं ये सब विषय का समस्त जानता हूं और प्रवञ्चक करके शिष्य को मन्त्र या उपदेश देते तो वही प्रवञ्चक गुरु परम गुरु परमात्मा के निकट दोषी होकर अनन्त काल नरक भोग करते हैं सो ऐसे प्रवञ्चक गुरु का विचार पूर्व्वक दण्ड विधान करना राजा का कर्त्तव्य है। यदि ऐसे प्रवञ्चक गुरु लोगों का मुक्ति देने के शक्ति रहता तो शिष्य लोगोंको कान में मन्त्र देने के समय ही में ज्ञान देकर मुक्ति दे सक्ते। जितने दिन शिक्षा करे न क्यों मन्त्र का ऐसा कोई शक्ति नहीं है जिस्के द्वारा लोगों का मुक्ति हो सक्ता है। निराकार साकार पूर्णरूप भगवान को नाम मन्त्र या ओंकार है। वही ओंकार मन्त्र शिष्य भक्ति पूर्व्वक निराकार साकार पूर्णभाव जप करने से या भगवान के उपासना करने से भगवान ज्योतिःस्वरूप दयामय गुरु दया करके जिन्के जैसा वासना उन्को वैसाही अभीष्ट सिद्ध करते हैं। जब तक शिष्यके अभीष्ट सिद्ध नही होता है तबतक भगवान गुरुके नाम जो मन्त्र है वह भक्ति पूर्व्वक जप करके उपासना करेंगे। जबतक पुत्र कन्या अपने माता पिता का उत्तर नहीं पाते तबतक माता पिता को भक्ति पूर्व्वक एकबार या हजार बार माता पिता बोल कर पुकारते हैं। जब माता पिता दया करके उत्तर देते हैं तब और पुकारने का प्रयोजन नहीं रहता है। वैसेही भगवान के नाम जो मन्त्र उस के सम्बन्ध में सिद्धि असिद्धि के भाव समुझ लेना होता है। भगवान जो गुरु दयामय उन्हीं के दया के उपर सिद्धि असिद्धि निरभर करते हैं। वह दया करने से एक मुहुर्त्त में कार्य्य सिद्धि होता है, वह कृपा न करें तो कोटिन युग मन्त्र जपने से भी कुछ नहीं होता है।

गुरु शिष्य वा मन्त्र के रूप स्वरूप पक्षमें एकही हैं। रूपान्तर उपाधि भेद से पृथक पृथक बोध होता है। गुरु के रूप निराकार साकार ओंकार विराट परब्रह्म सूर्य्यनारायण हैं। शिष्य के

रूप अज्ञान वश चन्द्रमा ज्योतिः हैं। शिव या जीव वाचक ओंकार मन्त्र के रूप बिन्दु सूर्य्यनारायण हैं। अर्द्ध माता चन्द्रमा ज्योतिः शिव या जीव ओंकार हैं। ज्ञानेन्द्रिय वो कर्म्मेन्द्रिय लेकर एक ओंकार मङ्गलकारी विराट परब्रह्म चन्द्रमा सूर्य्य नारायण जीव समस्त के आत्मा, माता, पिता गुरु, ज्ञान मुक्ति दाता, परम गुरु परमात्मा हैं। इन के सिवाय द्वितीय कोई परम गुरु मुक्ति दाता यही आकाश में हुए नहीं, होंगे नहीं होने का सम्भावना भी नहीं है। यह ध्रुव सत्य जानेंगे। यदि इन के सिवाय द्वितीय सत्य कोई रहे तो उन के अस्तित्व ही कहां हैं, उन के गुणही कहां हैं? लौकिक गुरु जो जैसा या जो विषय में शिक्षा पाकर जिन को जैसा या जो विषय में शिक्षा देते हैं उन को सोई सोई विषय में वही गुरु होते हैं। इन के सिवाय जन्म दाता माता पिता गुरु, अन्नदाता गुरु इत्यादि। गुरु शिष्य विषयों में ऐसेही भाव समस्त समझ लेंगे।

जैसे अग्नि समुदय स्थूल पदार्थ विष्ठा चन्दन नाम रूप भस्म करके उपरान्त अपना रूप बनाकर अदृश्य निराकार होते और भिन्न भिन्न नाम रूप नहीं रहती तैसेही जीव के नाना प्रकार अज्ञान वश भ्रान्ति आदियों को सूर्य्यनारायण ज्योतिः स्वरूप गुरु भस्म करके उपरान्त जीव को अपना रूप बनाकर मुक्ति स्वरूप परमानन्द में रखते हैं तब जीव का कोई भ्रान्ति या दुःख नहीं रहता है।

गुरु किन को कहते हैं।

गु शब्द के अर्थ अन्धकार अर्थात् अज्ञानता और रु शब्द के अर्थ प्रकाश। जैसे सूर्य्यनारायण प्रकाश होने से और अन्धकार नहीं रहता। ऐसेही वही गुरु जिन्के प्रकाश होने से और अज्ञानता

नहीं रहता। जो जीवात्मा वो परमात्मा को अभेद करके परमानन्द में आनन्द रूप रखते हैं अर्थात् पूर्ण परब्रह्म ज्योतिः स्वरूपही परम गुरु परमात्माही मुक्ति वो ज्ञान दाता हैं। उनके सिवाय अपर कोई गुरु नहीं है और हो भी नहीं सक्ते हैं।

जो सत्य पंथ में गेये हैं, सत्य ही में जिन को प्रगाढ़ निष्ठा है, जितने सत्यही बोलते है, जिनको सत्यही व्यवहार है, सत्य ही प्रिय हैं और जो सब कोई को समभाव से अपनाही आत्मा जान कर सत उपदेश देते वही सत गुरु अर्थात् उपदेश गुरु हैं। ऐसेही लोगों के निकट सत उपदेश लेना उचित है।

गुरु का प्रयोजन क्या है।

जैसे प्यास निवारण के लिये जल का प्रयोजन होता है, तैसेही अज्ञान दूर करने के लिये और ज्ञान, मुक्ति पाने के लिये गुरु का प्रयोजन होता हैं।

ओंकार जपने का प्रयोजन।

परमात्मा का नाम ओंकार है। ओंकार मन्त्र जप करने का प्रयोजन यह है कि, जैसे माता पिता को कोई पुत्र कन्या का पुकारने का प्रयोजन होने से "माता पिता" शब्द उच्चारण करके पुकारना होता है, और माता पिता उत्तर देने से और पुकारने का प्रयोजन नहीं रहता है। तैसे ही माता पिता रूपी निराकार साकार ओंकार पूर्णपरब्रह्म ज्योतिःस्वरूप गुरु आत्मा माता पिता को अज्ञान दूर करने के लिये भक्ति पूर्व्वक ओंकार नाम धरके पुकारना होगा और ओंकार पूर्णपरब्रह्म ज्योतिःस्वरूप आत्मा माता पिता आपलोगों का भितर वो बाहर में प्रकाश होने से

और उन्को पुकारने का प्रयोजन नहीं रहेगा। वही तब आप लोगों का सकल प्रकार अज्ञान वो भ्रम और दुःख निवारण करके परमानन्द में आनन्द रूप रखेंगे।

ओं

सूर्य्यनारायण, अग्नि में आहुति प्रदान, सूर्य्यनाराय को ध्यान वो ब्रह्मगायत्री सम्बन्ध में विचार।

अनादि सनातन धर्म्म अर्थात् पूर्णपरब्रह्म ज्योतिःस्वरूप प्रत्यक्ष विराट रूप से जगत पिता जगन्माता जगद्गुरु जगदात्मा विराजमान हैं। उन्हीं को परित्याग करके आर्य्यगणों का आज क्या दुर्दशा न हुई है!! सो धैर्य्य नहीं, सो तेज नहीं, सो साहस नहीं, सो विक्रम नहीं, सो एकता नहीं, सो कार्य्यतत्परता नहीं, सो तितिक्षा नहीं, सो निष्ठा नहीं, सो भक्ति नहीं, सो दया नहीं, सो धर्म्म नहीं, सो साधना नहीं सुतरां सो सिद्धि भी नहीं है, सर्व्व विषय में बल हीन हुये रहते हैं। बाल्य ही अवस्था में सन्तानगणों को सत उपदेश, सत धर्म्म वो सत शिक्षा देना माता पिता का कर्त्तव्य है; परन्तु अल्प माता पिता ही इस कार्य्य को किये रहते हैं। यदि पूर्व्वकाल के अर्थात् वैदिक समयके अनुसार पिता माता सन्तानगणों को शिक्षा देते, तो जगत का जो कितना मङ्गल होता तिस के वर्णन नही हो सक्ता है! बाल्य अवस्था में ब्रह्मचार्य्य अवलम्बन करें, और ज्ञान वो मुक्ति लाभ करके मनुष्य संसार में प्रवेश करें, तो उन के द्वारा संसार को कार्य्य जो उत्तम रूप से सम्पन्न होता है जिस्को कहना बहुत ही कठिन है। वह अपने को तो पहिलेही उद्धार करते है, और संसार में प्रवेश करके संसारको भी उद्धार करते हैं। परन्तु वृद्ध अवस्था में धर्म्म उपार्ज्जन

करने जानेसे सिद्ध होना बहुत ही कठिन है। क्योंकि बाल्य अवस्था से मन असत पदार्थ में लिप्त रहने से युवा अवस्था में इन्द्रियों के प्रबल तेजः से उसीके वशीभूत होते हैं। सुतरां वृद्ध अवस्था में इन्द्रियों मन निस्तेज हो पड़ती, उन लोग के कार्य्यकारी शक्ति और नहीं रहती इसलिये मन संयम नहीं होती है। जो अभ्यास बाल्य अवस्था से साधारण ज्ञान के सङ्ग में सङ्गी हो आई है, (धर्म्म वा अधर्म्म विषये) सोई अभ्यास को और किसी तरह परभी परित्याग नहीं होतो। सुतरां धर्म्म कर्म्म अर्थात् साधना भी अति उत्तम रूप से पहिले नहीं होती है। जीव जो संसार में रह कर नित्य नाना प्रकार की कष्ट भोग करते हैं, वल न रहना ही उन के एकमात्र कारण है। अनादि सनातन धर्म्म में प्रथम ही से बाल्य अवस्था में विद्या के साथ ही साथ धर्म्म अर्थात् ईश्वर विषय का ज्ञान वो मुक्ति उपार्ज्जन करके संसार में प्रवेश करने का विधि रही है।

उपनयन के समये द्विजाति को सत् उपदेश वो सत्शिक्षा और दिक्षा दिया जाता है। तब उन लोग को यही मात्र कहा जाता कि, आज से आप लोग द्विज हूये, आप लोग का कार्य्य ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन करके वेद पाठ करना अर्थात् ओंकार ब्रह्मगायत्री को जप करना, अग्नि में आहूति देना, सावित्री जगत जननी बोल कर सूर्य्यनारायण को ध्यान धारना करना। यह सब कार्य्य करने से आप लोगों का ज्ञान वो मुक्ति होगा।

उपनयन होने के समय वेद पाठ कहने का कारण यह है कि वेद पढ़ने से ईश्वर अर्थात् पूर्णपरब्रह्म ज्योतिःस्वरूप शुद्ध सत्य हैं, यह मन में प्रकाश हो कर मन पवित्र होगा।

ओंकार वो ब्रह्मगायत्री के जप करने का कारण यह है कि, पूर्णपरब्रह्म ज्योतिःस्वरूप ही कें नाम ओंकार वो ब्रह्मगायत्री है। वही मन्त्र अर्थात् नाम धरके उन्हीं को पुकारना होगा।

सूर्य्यनारायण को सावित्री कह के धारण करने का अभिप्राय यह है कि ब्रह्म को निराकार साकार पूर्णरूप से पहिले धारण कर नहीं सकेंगे। वही प्रत्यक्ष साकार मङ्गलकारी या मङ्गल कारिणी तेजोमय ज्योतिः चन्द्रमा सूर्य्यनारायण रूप से विराजमान हैं। इस लिये परमात्मा के रूप वो अपना रूप सूर्य्यनारायण-ज्योतिःस्वरूप कह कर धारण वो निराकार साकार पूर्णरूप से उपासना करने होता है। और भी ज्योतिःस्वरूप परब्रह्म सूर्य्य-नारायण को ध्यान वो धारणा करने का प्रयोजन यह है कि जैसे भोजन न करने से स्थूल शरीर में उठने बैठने को सामर्थ नहीं रहती, और भोजन करने से स्थूल शरीर में बल होती है और उठने बैठने को सामर्थ भी होती है। वैसे ही आध्यात्मिक विषयों में आपलोगों सूक्ष्म शरीर से तेजहीन वो बलहीन हुयें रहते है। जगतपिता, जगन्माता, जगद्गुरु, जगदात्मा, ज्योतिःस्वरूप सूर्य्य-नारायण को भक्ति पूर्व्वक धारण करने से आध्यात्मिक विषयों में उन्नति होती है; तेज, बल, बुद्धि वो ज्ञान जन्मती है। और पूर्णरूप से परमात्मा को धारण करने की शक्ति आती है। मन में निष्ठा वो भक्ति भी होती है। ऐसेही ज्योतिःस्वरूप सूर्य्यनारायण को धारण करने से जीवात्मा वो परमात्मा को अभेद देखेंगे, और क्या व्यवहारिक क्या पारमार्थिक उभय कार्य्य समुझ कर उत्तमरूप से निष्पन्न कर सकेंगे, और सर्व्वदा निर्व्विकार होकर परमानन्द में रह सकेंगे। गृहस्थ धर्म्म में रहके भी कोई विषयों में आसक्ति न जन्मेगी। लाभ वो नोकसान में, सुख वो दुःख में समभाव से रहेंगे। देखेंगे कि लाख रुपैये लाभ होने से हमारा कुछ भी लाभ नहीं हुई, और लाख रुपैये नोकसान होने से हमारा कुछ भी हानी नहीं हुई, मैं जैसे के तैसे ही हैं।

त्याग; ग्रहण विषय में देखिये कि, इस ब्रह्माण्ड के मध्य में हमारा कोई ऐसी वस्तु है, जो हम त्याग वा ग्रहण करूं? यदि

हमारा अपना कोई भी वस्तु होती, तो हम उसको त्याग वा ग्रहण करते। इस संसार के मध्य में जब हमारा कोई भी वस्तु अपना नहीं है, ऐसा कि यही जो स्थूल शरीर वह भी हमरा नहीं है, क्योंकि मैं मृत्यु के समय इस को सङ्ग में नहीं ले जा सकूंगा तब हमारे में त्याग वो ग्रहण कुछ भी नहीं है। अज्ञान हेतु हमारा त्याग वो ग्रहण, हम वो हम से पृथक परमात्मा इत्याकार बोध होता था, परन्तु यथार्थ वह नहीं है। दृश्य अदृश्य समस्त को लेकर परब्रह्म ज्योतिःस्वरूप भगवान परिपूर्ण हैं। ज्ञानी लोगों त्याग वो ग्रहण के प्रकृत भाव समुझ कर संसार में परमानन्द रहते हैं।

अग्नि में आहुति देने का अर्थ यह है कि उन्हीं से जगत् का हित होता है। जैसे कृषक लोग पृथिवी तत्वमें जोत करके धान रोपन करते हैं, उपरान्त उस में अङ्कुर होकर गाछ होता है, फिर उस में फल अर्थात् धान होता है। एक विघा खेत में चार अथवा पांच सेर धान बोने में विश वा पचिश मन धान होता है। ऐसि हो अग्नितत्त्व में उत्तम उत्तम द्रव्य आहुति देने से उनके धुम (धुआं) आकाश में जाकर मेघ होता है, उपरान्त देवता प्रसन्न हो कर उसी मेघ से समय पर जल वर्षण करते हैं, और उसी से अन्नादि उत्पन्न करके प्रजागणों को पालन करते हैं। और यज्ञ का धुम से वायु परिष्कार होता है। और अग्नि का तेज से अन्तःकरण शुद्ध होता है। अन्तःकरण शुद्ध होने से परमात्मा में निष्ठा वो भक्ति उत्पन्न होता है। अग्नि में आहुति देने से विवेक उदय होता है, क्योंकि प्रत्यक्ष देखने में आता है कि, जो कोई वस्तु अग्नि में दी जाती है, अग्नि वही समस्त को भस्म करके अपनाही रूप बनाकर, निराकार हो जाति हैं! वही समस्त द्रव्य कहां जाता है इस प्रश्न को विचार करने जाने से विवेक अपना ही से आकर उदय होता है, और जगत् संसार ब्रह्म से भिन्न नही भासते सभी ब्रह्म-

मय भासते हैं इस लिये और आशक्ति नहीं जन्मती। श्मशान में जाकर योग करने का सारभाव समुझने होगा। मन को प्रकृत श्मशान कहते हैं, जैसे वाह्यिक श्मशान में शवदाह होती है, तैसेही मनरूप श्मशान में ज्ञान अग्नि द्वारा द्वैत, अद्वैत, जन्म, मृत्यु, माया प्रभृति भस्म होती है। यही मनरूप श्मशान में बैठ कर ज्ञानवान पुरुष शिव अर्थात् परब्रह्म की उपासना वो धारना करके कल्याण शिव अर्थात् परब्रह्म स्वरूप होते हैं। और भी प्रत्यक्ष देख पड़ती है कि, जो कोई वस्तु अग्नि में दिजिये न क्यों अग्निदेव अपना रूप कर लेते हैं। यद्यपि वह समस्त द्रव्य स्वरूप में एक न होती तो फिर कभी ही एकरूप नहीं होती।

बेदादि शास्त्र में सूर्य्यनारायण में नाना देवता का नाम कल्पना करके परमात्मा को ध्यान धारणा करने का विधि है। यथा;—प्रात में ब्रह्मारूप, मध्यान में विष्णुरूप और सायंकाल में शिवरूप। प्रात में ऋग्वेद अर्थात् कालीमाता रूप, मध्यान में यजुर्व्वेद अर्थात् दुर्गामाता रूप और सायंकाल में सामवेद अर्थात् सरस्वती मातारूप से सूर्य्यनारायण को ध्यान धारण करने का विधि है। यथा;—प्रात मे ब्रह्मारूपः—

"ओं रक्तवर्णं चतुर्म्मुखं द्विभुजं अक्षसूत्र-
कमण्डलुकरं हंसासनसमारूढ़ं
ब्रह्मानं (नाभिदेशे) ध्यायेत्।"

इसके अर्थ अनेक प्रकार का करते हैं। परन्तु इसके आध्यात्मिक सार मर्म्म ऐसे जानेंगे, यथा;—"रक्तवर्णं" अर्थात् प्रातःकाल में जब सूर्य्यनारायण लाल—तेजोमय ज्योतिः बालक स्वरूप निराकार से साकार रूप प्रकाश होते हैं, वही प्रातः समय के रूप को "रक्तवर्णं कहते हैं; "चतुर्म्मुखं" अर्थ चतुर्दिक अर्थात् जिनके चारो तरफ मुख है, जैसे अग्निज्योतिः के दशो दिशाही मुखं है,

अर्थात् जिधर से हात दिजिये उधर ही से हात जलेगी, तैसे ही पूर्णपरब्रह्म ज्योतिःस्वरूप सूर्य्यनारायण की दशो दिशाही मुख है। "मुख" के अर्थ ज्योतिः। चन्द्रमा सूर्य्यनारायण ज्योतिः जब उदय होते हैं, तब उन्हीं के ज्योतिः चतुर्द्दिक ही अर्थात् समस्त जगत ही प्रकाशित होती है। इस लिये मुनिऋषिगण प्रातःकाल में ज्योतिःस्वरूप सूर्य्यनारायण को चतुर्म्मुख ब्रह्मारूप कल्पना की है। प्रातः में जब वही ज्योतिः ब्रह्मारूप से प्रकाश होते हैं; तब प्रत्येक नर-नारी भक्तिपूर्व्वक उन को नमस्कार वो ध्यान धारणा करेंगे। "द्विभुज" के अर्थ दो हात। जो निराकार ब्रह्म हैं, उनका दो हात नहीं है। विद्या और अविद्या ज्ञान वो अज्ञान यही ब्रह्म का दो हात है। अविद्यारूप हात से वह इस ब्रह्माण्ड को रचना करते हैं। और विद्यारूप हात से सब को लय करके कारणरूप में स्थित करते हैं। "अक्षसूत्र" "अक्ष" अर्थ में इन्द्रिय "सूत्र" शब्द में ज्योतिः, अर्थात् समस्त इन्द्रियों को सूत्ररूप होकर एकत्र गांथे हैं ऐसे जो चेतन ज्योतिः। "कमण्डलुकरं" शब्दसे चराचर ब्रह्माण्ड के स्थूल शरीर है। जो वही ज्योतिः सूत्र में गांथ कर अपने हात में रखे हैं। अर्थात् समस्त ब्रह्माण्ड ही उनसे उत्पन्न वो उन्हीं मे लय पाते हैं; और उन्हीं में समस्त स्थित हैं। "हंस" शब्द में विवेकी। हंस जैसे नीर परित्याग करके क्षीर अर्थात् दुध को पान करते हैं, तैसे ही भक्तजन उन्से भिन्न भाव जगत को जलवत असार वोध से परित्याग करके अभिन्नभाव परमात्मारूप अमृत क्षीर को पान करते हैं, इस लिये उन लोगों का नाम हंस है। वही भगवद्भक्त विवेकी पुरुषरूपी हंस के उपर ब्रह्मा अर्थात् पूर्णपरब्रह्म ज्योतिःस्वरूप आरूढ़ हैं, अर्थात् वह उन्ही भक्तजनके हृदय में प्रत्यक्ष प्रकाश रहते हैं। यदि भी वह सब के मध्य में ही परिपूर्णरूप से हैं; तौभी विवेकी पुरुष में वह विशेषरूप से प्रकाशमान हैं। जब वही विवेकी पुरुष वा

हंस परमपद प्राप्त होते हैं, तब उन्हीं को परमहंस कहते हैं, अर्थात् जिनको जीवात्मा वो परमात्मा अभेद ज्ञान हुई हैं, वही परमहंस हैं। नाभि में धारण करने का अर्थ यह है कि आप के क्षुद्र नाभी में और विराटरूप आकाश नाभि में तेजोमय ज्योतिः अर्थात् जगतपिता, जगन्माता, जगद्गुरु, जगदात्मा, चन्द्रमा, सूर्य्यनारायण जो प्रकाशमान हैं। वही परमात्मा को भक्तिपूर्व्वक धारण अर्थात् चिन्ता करिये वह भितर बाहर, परिपूर्ण रूप से विराजमान हैं। मध्याह्न में विष्णुरूपः—

"ओं नीलोत्पलदल प्रभं चतुर्भुजं शङ्ख चक्र गदा पद्म हस्तं गरुड़ासनारूढ़ं (हृदि) केशवं ध्यायेत्।"

आपके क्षुद्र हृदयमें वो विराट ब्रह्म के आकाशरूप हृदय में "नीलोत्पलदल प्रभं" अर्थात् नीलवर्ण आकाश में फुल्ल पद्म सदृश विष्णु भगवान परमज्योतिः चन्द्रमा सूर्य्यनारायण प्रकाशमान है। "शङ्ख चक्र गदा पद्म हस्तं" शङ्ख अर्थ से चराचर समष्टि, का मस्तक जब विष्णु भगवान् चेतन—मस्तकरूपी शङ्ख बजाते हैं, तब जीव समस्त सर्व्व कार्य्य करते हैं, वो बाइबेल कोराण वेद वेदान्त शास्त्रादि पढ़ते है। जब वह अपने चेतन शक्ति को सङ्कोच कर लेते हैं, और कोई कार्य्य नहीं करते। "चक्र" अर्थात् ज्ञान। उसी ज्ञान चक्र देकर अज्ञानरूपी राक्षस को खण्ड खण्ड करते हैं और जीवात्मा परमात्मा अभेद भाव देखा कर जीव को परमानन्द में आनन्दरूप रखते हैं। "गदा" अर्थ अविद्या। अहङ्कारी अर्थात् परमात्माविमुख लोगों को वही अविद्यारूपी गदा से ताड़ना करते हैं। और "पद्म" शब्द से मन—सोई मनोरूप पद्म से समस्त ज्ञानेन्द्रिय वो कर्म्मेन्द्रिय को चलाते हैं। परमात्मा की कृपा से इन्द्रियादिके सहित मन जय होता हैं। मन जय होने से सभी जय होता है। विष्णु भगवान का जो चार हात कल्पना

की गई है, वह चार अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त वो अहङ्कार। यही चार हातों से चराचर को पालन करते हैं। "गरुड़ासनारूढ़ं।" "गरुड़" लौकिक अर्थ से पुराण में वर्णन है पक्षीराज, इस्के आध्यात्मिक अर्थ ज्ञानी पुरुष जो जीवात्मा परमात्मा अभेद भाव उपलब्ध करते हैं। उनका दोपक्ष है—ज्ञान वो कर्म अर्थात् विचार वो आचार हैं। उनके भितर वो वाहर में परिपूर्णरूप से विष्णु भगवान आरूढ़ अर्थात् विराजमान हैं, और समस्त इन्द्रियों को प्रेरणा से जगत को पालन करते हैं। वही विष्णु भगवान ज्योतिःस्वरूप पूर्णपरब्रह्म को निराकार वो साकाररूप अखण्डाकार को नमस्कार वो भक्ति करना उचित है। वही प्रत्यक्ष बिराजमान है। सायंकाल में शिवरूप—

"ओं श्वेतं द्विभुजं त्रिशूल—
डमरुकरमर्द्ध चन्द्रविभूषितं
त्रिनेत्रं वृषभस्थं (ललाटे) शम्भु ध्यायेत्।"

"श्वेतं" अर्थ शुक्लवर्ण—सायंकाल में जब सूर्य्यनारायण महातेजः सङ्कोच करके शीतल चन्द्रमा ज्योतिःरूप से प्रकाश होते हैं, उसी समय में शिवरूप से वही ज्योतिः को धारण करने होता है। "द्विभुजं" के अर्थ विद्या वो अविद्या। "त्रिशूल" के अर्थ सत्व, रजः, तमः यही तिन गुण; "डमरु" चराचर का मस्तक। यही चराचर के मस्तकरूप वाजा से कितने प्रकार ज्ञान विज्ञान विवेकादि राग रागिणी वाहर होती है, उस के अन्त नहीं है। यही शरीररूपी डमरु बाजों को शिव चेतन अर्थात् पूर्णपरब्रह्म ज्योतिःस्वरूप बजाते हैं, और इस से नानाप्रकार शब्द वाहर होता है। जिस से कितने वेद, शास्त्र, बाइबिल कोराण उत्पन्न होता है "अर्द्ध चन्द्र विभुषितं अर्थात् चन्द्रमाज्योतिः भुषण संयुक्त "भूषन" के अर्थ माया जगत्। शिव शब्द में ज्योतिः चेतन हैं। "त्रिनेत्र"

अर्थ स ज्योतिःस्वरूप अग्नि, चन्द्रमा वो सूर्य्यनारायण अर्थात् अज्ञान, ज्ञान वो विज्ञान। अज्ञान नेत्र से मनुष्य व्यवहारिक कार्य्य करते हैं, वो विज्ञान नेत्र से सत्य असत्य को विचार करते हैं, वो विज्ञान नेत्र से जीवात्मा परमात्मा अभेद देख कर अर्थात् एक होकर परमानन्द में मुक्तस्वरूप रहते हैं। "वृष" (षाँड़) अर्थात् अहङ्कार उसी के ऊपर वह आरूढ़ रहते हैं अर्थात् अहङ्कार अथवा काम उनका वशीभूत हैं अहङ्कार वो काम रूप षाँड़ के सदृश बलवान और जगत में कोई नहीं हैं। "ललाटे ध्यायेत्" अर्थ मस्तक में ध्यान करेंगे, अथवा ज्योतिःस्वरूप चन्द्रमा सूर्य्य-नारायण को प्रीति भक्ति पूर्व्वक अपने क्षुद्र ललाट में और विराट ब्रह्म के आकाश रूप ललाट में धारण करेंगे। विराट चन्द्रमा सूर्य्यनारायण ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म ही के निचे लिखी हुई नाम कल्पना की गई है। यथा:—ऋक्, यजु वो साम बेद, वेदमाता वो दुर्गा, काली, सरस्वती, गायत्री वो सावित्रीमाता, ब्रह्मा, विष्णु महेश्वर, इन्द्र, गणेश, ईश्वर इत्यादि। प्रातः में ऋग्वेद अर्थात् कालीमातारूप मध्यान में यजुर्बेद अर्थात् दुर्गामाता रूप वो सायंकाल में सामबेद अर्थात् सरस्वती मातारूपसे सूर्य्यनारायण को ध्यान करने का विधि है।

सन्ध्याह्निक में ब्रह्मगायत्री वो सावित्री प्रभृति सकल नाम का ध्यान सूर्य्यनारायण में वर्णन है। यथा—

"ओं प्रातर्गायत्री रविमण्डलमध्यस्थारक्तवर्णाद्विभुजा अक्षसूत्रमण्डलुकरा हंसासनरूढ़ा ब्रह्माणी ब्रह्मदैवत्या कुमारी ऋग्वेदोदाहृता ध्येया।"

प्रातः में गायत्री को कुमारी ऋग्वेद अर्थात् दुर्गामाता स्वरूपिणी ब्रह्मरूपिणी, हंसारूढ़ा अक्षसूत्र वो कमण्डलुहस्ता, रक्त वर्णा, द्विभुजा, सूर्य्यमण्डल में हैं ऐसे चिन्ता करेंगे।

मध्याह्न में—

"ओं मध्याह्ने सावित्री रविमण्डल मध्यस्था कृष्णवर्णा चतुर्भुजा त्रिनेत्रा शङ्खचक्रगदा पद्महस्ता युवती गरुड़ारूढ़ा वैष्णवी विष्णु दैवत्या यजुर्व्वेदोदाहृता ध्येया ।"

मध्याह्न में गायत्री को (युवती, यजुर्वेदस्वरूपिणी, विष्णु-रूपिणी गरुड़ारूढ़ा, कृष्णवर्णा चतुर्भुजा, त्रिनेत्रा, शङ्खचक्रगदापद्म धारिणी साविचीरूपा सूर्य्यमण्डल में हैं) ऐसे चिन्ता करेंगे।

सायंकाल में—

"ओं सायाह्ने सरस्वती रविमण्डलमध्यस्था शूक्लवर्णां द्विभुजा त्रिशूलडमरुकरा वृषभासनारूढ़ा वृद्धा रुद्राणी रुद्रदैवत्या सामवेदोदाहृता ध्येया ।"

सायंकाल में गायत्री को सामवेदस्वरूपा, शिवरूपिणी, वृषभा-रूढ़ा, शुक्लवर्णा, द्विभुजा, त्रिशूल वो डमरुधारिणी, सरस्वतीरूपा सूर्य्यमण्डल में हैं ऐसे चिन्ता करेंगे। यही सब विषयों का सारभाव यह है कि, एकमात्र ज्योतिःस्वरूप परमात्मा को सर्व्व-शक्तिमान पूर्णरूप से धारण करेंगे।

अज्ञान अवस्थापन्न मनुष्यलोगों मन में करते हैं कि विराट भगवान ज्योतिःस्वरूप सूर्य्यनारायण वो सूर्य्यनारायण के मण्डल अर्थात् उनका प्रकाश वो उन में जो कल्पित देव देवी ईश्वर भगवान उनलोगों पृथक पृथक हैं। उनलोगों नहीं जानते कि देव देवी सूर्य्यनारायणही का नाम मात्र है। ज्ञानवान मनुष्यलोगों

जानते हैं कि समस्त कल्पित देव देवी के नाना नाम ज्योतिः स्वरूप का नाम है, देव देवी इन से पृथक वस्तु नहीं हैं। जैसे अग्नि वो अग्नि के प्रकाश वो दाहिक शक्ति यह समस्तही अग्नि हैं, अग्नि से पृथक नहीं हैं। तैसे सूर्य्यनारायणही समष्टि विराट स्वरूप हैं। ज्योतिःस्वरूप प्रातःकाल वो सायंकाल में जब निराकार से साकाररूप प्रकाश होते हैं। तिस समय बालक, वृद्ध, युवा पुरुष, स्त्री सब कोई भक्ति पूर्ब्बक नमस्कार करेंगे। मन में रखेंगे कि इन्हीं आपलोगों के माता पिता गुरु वो आत्मा हैं। इन्हीं आपलोगों का मनके सकल प्रकार भ्रम, कुसंस्कार दूर करके परमानन्द में आनन्दरूप रखेंगे ; और धर्म्म, अर्थ काम, मोक्ष यही चतुर्व्विध फल देंगे। एक अक्षर प्रणव मन्त्र जप करेंगे। चार वेद के मूल चौविश अक्षर गायत्री, गायत्री के मूल ओंकार प्रणव मंत्र। और ओंकार के मूल पूर्णपरब्रह्म तेजोमय ज्योतिःस्वरूप चन्द्रमा सूर्य्यनारायण, जगद्गुरु जगदात्मा। यद्यपि कोई सन्ध्या आह्निक न करके केवल ब्रह्मगायत्री का जप करें तो उनके सन्ध्या आह्निक करने का फल होगा। और सन्ध्या आह्निक वो गायत्री दोनों न करके केवल मात्र एक अक्षर ओंकार मन्त्र को भक्तिपूर्ब्बक जप करें तो सन्ध्या आह्निक वो ब्रह्म गायत्री दोनों जप करने का फल होगा। यह सब कुछभी न करें यदि विराट ब्रह्म चन्द्रमा सूर्य्यनारायण ज्योतिः के सन्मुख भक्ति प्रीति पूर्ब्बक पूर्णरूपसे नमस्कार करें, तो समस्त फल ही लाभ होता है वो मन में शान्ति आता है। ओंकार मन्त्र पूर्णपरब्रह्म ज्योतिःस्वरूप विराट भगवान का नाम है। विराट परब्रह्मके अङ्ग प्रत्यङ्ग का नाम देवता और देवी माता है। वेद में स्पष्ट ही लिखा है कि सूर्य्यनारायण, चन्द्रमा, अग्नि, वायु इत्यादि देव वो देवी माता है। आपलोगों यही इष्ट गुरु परमात्मा से विमुख होकर आर्य्यजाति इतने बलहीन तेजहीन हुये हैं। ज्योतिः के धारणापूर्ब्बक

परमात्मा के पूर्णभाव से उपासना का जो विधि कहा गया है वही ब्राह्मणलोगों का सनातन धर्म है। जिनलोग उपनिषत् के संग वेदाध्ययन किये हैं वहलोग इस को अच्छी तरह जानते हैं। परन्तु वस्तु के उपर लक्ष्य भ्रष्ट होकर केवल शब्दों का चर्चा से यथार्थ शास्त्र का ज्ञान नहीं होती और उस के अनुसार से साधन क्रिया भी नहीं होता है यह कहना अत्युक्ति नहीं है। पण्डितलोगों में जो सब शास्त्र प्रचलित है साधन प्रवृत्ति दृढ़ करने के लिये उन के काईएक विषय उद्धृत होता है। जिन लोग का वे विषय को विस्तार रूप जानने का प्रयोजन हो उन-लोग राजा लक्ष्मण सेन के धर्म्माध्यज हलायुध के "ब्राह्मण सर्व्वस्व" ग्रन्थ देखेंगे।

"आदित्ये ब्रह्मइत्येषा निष्ठाह्युपनिषत सु च।
छान्दोग्ये बृहदारण्ये तैत्तिरीये तथैव च॥"

योगी याज्ञवल्कः।

सूर्य्यनारायण को उपास्य ब्रह्म कहकर धारणाछान्दोग्य. बृहदारण्यक वो तैत्तिरीय उपनिषद में वर्णन हुई है।

"सहस्ररश्मिरेषोहव परमात्मा प्रजापतिः।"

साम्बपुराणम्।

यही जो असंख्य किरणयुक्त सूर्य्यनारायण इन्हीं यही दृश्यमान जगत् में प्रजापति परमात्मा हैं।

"आदित्याच्चपरं नास्ति न भुतं न भविष्यति।
स्वयं सर्व्वेषु वेदेषु परमात्मेति गीयते।"

भविष्यपुराणम्।

सूर्य्यनारायण से श्रेष्ठ नहीं है, हुआ नहीं, होगा भी नहीं। सर्व्व वेदं में इन्हीं को परमात्मा कहकर वर्णित हुई हैं।

आदित्यान्तर्गतं यच्चज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं।
हृदये सर्व्वजन्तुनां जीवभुतः स तिष्ठति॥
हृद्याकाशे च यो जीवः साधकैरुपवर्ण्यते।
स एवादित्यरूपेण वहिर्णभसि राजते॥
पाषाण मणिधातूनां तेजोरूपेन संस्थितः।
वृचौषधितृणानाञ्च रसरूपेण तिष्ठति॥

योगी याज्ञवल्क्यः।

सूर्य्यमण्डल के अन्तर्गत जो ज्योतिः में श्रेष्ठ ज्योतिः हैं वही सब जीवों का अन्तर में जीवरूप से अवस्थिति करते हैं। वही साधकलोगों कर्तृक शास्त्रानुसार से अन्तराकाश में जीव काहकर वर्णित हुई है, वही बाहराकाश में सूर्य्यनारायणरूप से बिराजमान हैं। प्रस्तर, मणि और धातु के मध्य में भी वही तेजरूप से और वृक्ष, औषधी वो तृण में रसरूप से रहे हैं।

प्रत्यचदेवता सूर्य्योजगच्चचुर्दिवाकरः।
तस्मादप्यधिका काचिद्दे वता नास्ति शाश्वती॥
तस्मादिदं जगज्जातं लयं यास्यति तत्रच॥

भविष्यपुराणम्।

जगत के नेत्रस्वरूप दिवाकर सूर्य्यनारायण प्रत्यच देवता हैं। उन से श्रेष्ठ कोई नित्य देवता नहीं हैं। उन्हीं से यह जगत् उत्पन्न हुई है और उन्हीं में लय होगा।

भविष्योत्तर पुराणे आदित्य हृदये भगवद्वचन (३७ श्लोक) :—

पश्यति भक्त्याचादित्यं ध्रुवं पश्यति मां नरः।
यो न पश्यति चादित्यं स न पश्यति मां नरः॥

श्रीकृष्ण भगवान कहे हैं कि जो भक्तिपूर्व्वक आदित्य को दर्शन करते हैं, सो निश्चयही मुझको दर्शन करते। और जो आदित्य को दर्शन नहीं करते, सो मुझ को दर्शन नहीं करते। अर्थात् मैं (परमात्मा) आदित्य अर्थात् सूर्य्यरूप से प्रकाशहूं। जो भक्त मुझ को ऐसे दर्शन करते हैं वह निश्चयही मुझ को दर्शन करते या प्राप्त होते हैं और ऐसे दर्शन न करने से मुझ को दर्शन या प्राप्त नहीं होता है।

प्रतिमा पूजा के विषय शास्त्र में रूपक ऐसे वर्णन है कि,

"रथे वामनं दृष्ट्वा पुनर्ज्जन्म न विद्यते।

अज्ञानी लोगों इस्के अर्थ ऐसे करते हैं और विश्वास भी कर लेते हैं कि, काठ के रथ के ऊपर काठही के प्रतिमा जगन्नाथ को वामनरूप दर्शन करनेसे जीवों का मुक्ति होती है और पुनर्ज्जन्म नहीं होती। परन्तु यहां विचार पूर्व्वक मनुष्य मात्रही को समुझना उचित है कि, मनुष्य के तैयारी की हुई काठ के रथ वो जगन्नाथ को दर्शन करने से मुक्ति नहीं पाते हैं इस के कोई दूसरी अर्थ है। इस के सारभाव ऐसा समुझना होगा। रथ के अर्थ ब्रह्माण्ड की स्त्री पुरुष का स्थूल शरीर जगन्नाथ पूर्ण परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप चन्द्रमा सूर्य्यनारायण ज्योतिः विराट वामन भगवान जीव सब के स्थूल शरीर रथ में बिराज करते हैं। जीव चेतन आपलोगों को और चन्द्रमा सूर्य्यनारायण ज्योतिः स्वरूप को अभेद जानकर पूर्णरूप से त्रिपुन्ड मस्तक रथ में परब्रह्म भाव दर्शन करने से जीवों का और पुनर्ज्जन्म नहीं होता है यह ध्रुव सत्य जानेंगे।

जगन्नाथ की उलटा रथ और सीधा रथ के अर्थ जीवों के मनो-वृत्ति का गति है। पूर्ण परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप गुरु, माता, पिता

आत्मा में पूर्ण रूप से निष्ठा रहित जीव बाहर में भिन्न भिन्न नाम रूप देखकर बाहर में मनोवृत्ति से बासना संयुक्त होकर सत्य से विमुख होते हैं और मिथ्या आसक्ति वश होकर नाना कष्ट भोग करते हैं, जन्म मृत्यु के संशय रहता है इसी को उलटा रथ कहते हैं। और एक सत्य सिवाय दूसरा सत नहीं है यह जानकार निराकार साकार पूर्ण परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप गुरु, माता पिता आत्मा में जो जीवों का निष्ठा होता है इसी को सीधा रथ कहते हैं।

रथ में तीन ज्योति है—बलभद्र, जगन्नाथ वो सुभद्रा। जीव समस्त के नेत्रद्वार में जगन्नाथ तेजोमय सूर्य्यनारायण ज्योतिः हैं, नासिकाद्वार प्राणरूप चन्द्रमा ज्योतिः सुभद्रा माता हैं, मुखद्वार में अग्निरूप ज्योतिः बलभद्र हैं। यही जगन्नाथ, सुभद्रा और बलभद्र जगत के माता, पिता, गुरु, आत्मा को चिन्हकर शरणागत होइये, इन्हीं आपलोगों का सर्व्व प्रकार मङ्गल विधान् करेंगे।

जिन को जगन्नाथ, सुभद्रा, बलभद्र कहते हैं उन्हीं को राम, सीता, लक्ष्मण कहते हैं। पूर्ण रूप से ब्रह्मबोध न होना जीव है ब्रह्म, माया यही तीन भिन्न भिन्न बोध होने का नाम बनबास है। ज्ञानद्वारा अहंकाररूपी रावण बध करके निराकार, साकार पूर्णभाव से जीव, ब्रह्मको अभेद दर्शन होना बनबास से सीता सती को उद्धार करके अयोध्या उत्तरखण्ड में यानें मस्तक में राजत्व करना अथवा मुक्ति स्वरूप परमानन्द में रहना है। राम शब्द सर्व्वव्यापी परब्रह्म हैं, सती सीता साविची जगत जननी अर्थात परब्रह्म रूपिणी सृष्टि पालन संहारकारिणी परब्रह्म का शक्ति है। लक्ष्मण बस्तुज्ञान अर्थात ब्रह्म, जीव प्रकृति को एक अभेद जानने का नाम लक्ष्मण या ज्ञान है। लक्ष्मण के शक्तिशेल का अर्थ सत्य से भ्रष्ट जीव का जन्म मृत्यु संशय है। हनुमान बारह कला सूर्य्यनारायण को निगल गये या बगल में चाप लिये इस का भाव,

ऐसा समुझेंगे हनुमान अर्थ हरिभक्त जन, जो इन्द्रियों को हनन अथवा जय करते हैं। वही हनुमान बारह कला रूप से एक ओंकार मङ्गलकारी विराट परब्रह्म चन्द्रमा सूर्य्यनारायण को भक्ति पूर्व्वक पूर्णरूप से निगल जाते या बगल में धारण करते हैं अर्थात भक्ति पूर्व्वक मन में ब्रह्म जानकर हृदय में धारण करते हैं तब सती सीता जगत जननी को उद्धार अर्थात निराकार साकार पूर्णरूप से दर्शन कर सक्ते हैं।

वेद माता।

हिन्दुलोग वेद माता की प्रशंसा करते हैं कि, वेदमाता हमलोग का सनातन धर्म्म है। परन्तु वेदमाता किस को कहते हैं—मिथ्या या सत्य—यह न जानकर केवल श्रवणमात्र वस्तुशून्य शब्द कागज़ सियाही को वेदमाता कहके सम्मान करते हैं और जो प्रकृत धर्म्म या वेदमाता उन को जड़ माया प्रवृत्ति बोध से अश्रद्धा करके अज्ञान में आवृत्त हो रहे हैं।

शतपथ ब्राह्मण में है:—

"अग्नेर्वाऋग्वेदोजायते, वायर्वायजुर्वेदो जायते, सूर्य्यात्‌ सामवेदः।'

अग्नि से ऋग्वेद हुई है इस लिये अग्नि के नाम ऋग्वेद माता वायु से यजुर्वेद हुई है इस लिये वायु के नाम यजुर्वेद माता, और सूर्य्यनारायण से सामवेद हुई है, इस लिये सूर्य्यनारायण को सामवेद माता कहते हैं। अर्थात् एकही विराट पूर्ण परब्रह्म के अङ्ग प्रत्यङ्ग को उपाधि भेद से नाना प्रकार नाम कल्पित हुई है। परन्तु वही अनेक नहीं हैं, एकही स्वरूप निराकार साकार, पूर्ण रूप से विराजमान है। चारों वेद माता संसार में विराज करती हैं। निरंकार में सामवेद माता सूर्य्य

नारायण हैं। अथर्व्व वेद माता कर्णद्वार में आकाशरूप हैं। यजुर्वेद माता नासिकाद्वार में प्राणरूप हैं। ऋग्वेद माता जिह्वा में अग्निरूप हैं। अज्ञानापन्न मनुष्य वे सकल कल्पित नाम वो उस्के अर्थ लेकर व्याकुल रहते हैं, भिन्न भिन्न वस्तु समझ के उपासना करते हैं, मूल बस्तु परमात्मा के ऊपर उन का कुछ भी दृष्टि नहीं रहता है। परन्तु ज्ञानवान मनुष्य इन के सब नाम अर्थ त्याग करके मूल बस्तु परमात्मा को निराकार साकार पूर्णरूप से धारण करते हैं। जैसे जल के नाना प्रकार नाम उपाधि त्याग करके जल जो बस्तु है उस को उठाकर पान करने से प्यास शान्ति होता है। तैसेही सत्य, शुद्ध, चैतन्य, पूर्ण परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप, माता, पिता, गुरु, परमात्मा के नाना प्रकार कल्पित नाम उपाधि त्याग करके उन्हीं को अर्थात् ज्योतिः को पूर्णरूव से धारण करने से सहजही में मन शान्ति होता है। निराकार वो साकार पूर्णरूप से परमात्मा को उपासना मनुष्य मात्रही का कर्त्तव्य है। वही पूर्ण परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप गुरु, माता, पिता के उपर सर्व्वदा निष्ठा भक्ति वो प्रीति रखेंगे। उन्हीं का रूप, अपना रूप वो मन्त्र का रूप निराकार अदृश्य भाव से धारण नहीं होता, साकार प्रत्यक्ष ओंकार मङ्गलकारी विराट चन्द्रमा सूर्य्य नारायण ज्योतिः स्वरूप को वही एकही बस्तु जान के ध्यान धारण करेंगे।

काली, दुर्गा, सरस्वती, जगद्धात्री, लक्ष्मी, सावित्री, गायत्री अर्थात् मङ्गलकारिणी या मङ्गलकारी ओंकार विराट परब्रह्म के अङ्ग प्रत्यङ्ग शक्ति या ज्ञान के नाम वेद माता है। इन्हीं जीव समस्त के बाहर वो अन्तर मस्तक में ज्ञानरूप से प्रकाशमान हैं। यही मङ्गलकारिणी वेदमाता या ओंकार विराट परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप चन्द्रमा सूर्य्य नारायण, जब ऋषि मुनि के कण्ठ या जिह्वा में प्रेरणा करते हैं तब उनलोग साधारण जीव समस्त शब्द

उच्चारण क्या शास्त्रादि रचना कर सक्ते हैं नहीं तो नहीं कर सक्ते वेदमाता नेत्र के ज्ञान ज्योतिः संकोच करने से जीव समस्त सोये रहते हैं कोई ज्ञान नहीं रहता है। यही मङ्गलकारी ओंकार विराट परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप सिवाय वेदमाता, देव देवी धर्म्म, इष्टदेवता द्वितीय कोई सत्य नहीं है, होंगे नहीं, होने का सम्भावना भी नहीं है। यह ध्रुव सत्य सत्य जानेंगे।

नाना देवता वो मंत्र।

जो सत्य वो मिथ्या के अतीत हैं, उन को लक्ष्य करके शास्त्र वो लोक व्यवहार में दो शब्द प्रचलित है—सत्य वो मिथ्या। उस में मिथ्या सभी के निकट मिथ्या। मिथ्या से सृष्टि स्थिति वो प्रलय, शास्त्र, वो धर्म्म वो इष्ट देवता, ईश्वर, गड, खोदा, आल्लाह उपास्य उपासक उपासना प्रभृत्ति कुछभी नहीं हो सक्ता—होना असम्भव है। मिथ्या मिथ्याही है। मिथ्या कभी भी सत्य नहीं होता। सत्य सब के निकट सर्व्वकाल में सत्य हैं। एक सत्य सिवाय द्वितीय सत्य नहीं हैं। सत्य कभी भी मिथ्या हो नहीं सक्ते। केवल रूपान्तर मात्र होते हैं। एकही सत्य अपने इच्छा से साकार निराकार कारण सूक्ष्म स्थूल चराचर स्त्री पुरुष को लेकर असीम अखण्डाकार पूर्णरूप से नित्य स्वतः प्रकाश बिराजमान हैं। शास्त्र वो लोग व्यवहार में वही एकही सत्य की दो भाव या अवस्था कल्पित हुई है। एक सगुण साकार, और एक निर्गुण निराकार। निराकार—मन वो वाणी के, अतीत, ज्ञान के अगम्य, इन्द्रिय अगोचर हैं। सगुण साकार प्रत्यक्ष दृश्यमान इन्द्रिय गोचर, ओंकार विराट चन्द्रमा सूर्य्यनारायण ज्योतिः स्वरूप जगत के माता पिता आत्मा हैं। इन्हीं पुरुष एकही अखण्ड हैं। साकार निराकार इन के भाव मात्र है।

यही ईश्वर, गड, आल्लाह, खोदा, देव, देवी, परमेश्वर प्रभृति अर्थात् निराकार साकार मङ्गलकारी ओंकार विराट परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप चन्द्रमा सूर्य्यनारायण जगत् के गुरु माता पिता आत्मा या परमात्मा को एक अक्षर ओंकार, चौबीश अक्षर ब्रह्म गायत्री इत्यादि भिन्न भिन्न नाम रुप से क्यों कल्पना की हुइ है ?

मङ्गलकारी ओंकार विराट परब्रह्म जब अपनी इच्छा अनुसार नाना प्रकार नाम रुप जगत सृष्टि अर्थात् वहु रुप प्रकाश करते हैं या प्रकाश होते है तव रुपान्तर उपाधि भेद से इन को लक्ष्य करके भिन्न भिन्न भाषा में भिन्न भिन्न नाम कल्पित होता है।

पण्डितलोग नाना प्रकार कल्पित नाम के नाना शब्दार्थ करते हैं। परन्तु वस्तु विचार कर नहीं देखते कि, किस के शब्दार्थ करते और वह वस्तु कहां है ? जैसे भाषा विशेष में एक जल का नाना नाम कल्पित हुई है, परन्तु जल वस्तु जो वही है ; तैसेही परमात्मा के नाम सम्बन्ध में भी समुझना होता है। निराकार में शब्दार्थ नहीं है, प्रकाश साकार ब्रह्म में नाना नाम रुप, शब्दार्थ सम्भव होगा।

एक ओंकार परब्रह्म को "अ, उ, म," या "भुः, भुवः, स्वः," क्यों कहते हैं ? इन्हो एक से तिन भाग होकर जगत् जिन के नाम वही नाम रूप से जगत् के कार्य्य करते वो कराते अथच भीतर बाहर में एकही ओंकार पुरुष सर्व्वकाल में वर्त्तमान हैं। अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दुर्गा, काली, सरस्वती, अज्ञान, ज्ञान, विज्ञान सत्व, रजः, तमः, या ज्योतिः स्वरूप अग्नि चन्द्रमा सूर्य्य नारायण, यही समस्तको लेके या होके वो इन्हीं एकही हैं। इन्ही का नाम एक अक्षर ओंकार है। यही एक अक्षर ओंकारहि अ, उ, म," तिन अक्षर कल्पित हुई है। इन्हों को "भुः, भुवः, स्वः" कहना होता है। भुः लोक पृथिवी में, भुवः लोक अन्तरिक्ष में वो

स्वः लोक स्वर्गमें बहुतलोगों ऐसे खेयाल करतेहैं, परन्तु वस्तुके उपर किसी के नजर नहीं है। भुः लोक पृथिवी या जीव समस्त के नाभीचक्रमें जठराग्निरूप, भुवः लोक अन्तरिच जीव समस्तके प्राण वायुरूप चन्द्रमारूप वो स्वः लोक जीव समस्त के मस्तक में ज्ञान-स्वरूप विन्दुरूप सूर्य्यनारायण। इन्हीं को ब्रह्मगायत्री में महा-व्याहृति कहते हैं। जब इन्हीं नाना नामरूप ब्रह्माण्ड रचना करते हैं, तब इन्हीं का नाम रजोगुणात्मक ब्रह्मा कल्पित होता है; जब इन्हीं जीव समस्त को सत्वः गुणद्वारा प्रतिपालन करते हैं, तब इन का नाम सत्व गुणात्मक विष्णु भगवान कल्पित होता है; जब इन्हो यही नाम रूप जगत् को तेजोरूप से भस्म कर अपना रूप बना के निराकार कारण में स्थित होतेहैं, तब इन का नाम तमोगुणात्मक रुद्र या शिव कल्पित होता है। एकही ओंकार मङ्गलकारी विराट ब्रह्म को ब्रह्मगायत्री में ओं भुः, ओं भुवः, ओं स्वः, ओं महः, ओं जनः, ओं तपः, ओं सत्यम्—यही सप्त व्याहृति क्यों कहते? एकहो ओंकार परब्रह्म से यही सात भाग विस्तार होताहै इस लिये इन्हींको सप्तव्याहृति कहतेहैं। भुः अर्थ पृथिवी भुवः अर्थ जल इत्यादि क्रम से पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश चन्द्रमा, सूर्य्यनारायणही सप्तव्याहृति हैं। इनसे जीव समस्त के स्थूल शूक्ष्मशरीर का उत्पत्ति पालन या स्थिति होता है, इस लिये इन के नाम साविची या जीव समस्त के माता हैं।

यही मङ्गलकारी ओंकार परब्रह्म के चौवीश अक्षर ब्रह्म गायत्री क्यों कहते हैं? एक से बहुरूप धारण करते, इस लिये चौवीस अक्षर ब्रह्मगायत्री कहते हैं। यथा—पृथिवी, जल, अग्नि वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य्य नारायण, तारागण, विद्युत वो मेघ यह दश और जीव समस्त के दश इन्द्रिय और मन, वुद्धि, चित्त अहंकार यही चार अन्तः करण, यही चौवीश को लेकर चौवीश अक्षरब्रह्मगायत्री है। एकही परब्रह्म को रुपान्तर भेद से चौवीश

अक्षर ब्रह्मगायत्री कहते हैं। ब्रह्महो गायत्री वो गायत्रीही ब्रह्म हैं। ब्रह्म सिवाय द्वितिय सत्य यह आकाश मन्दिर में कोई या कुछही नहीं है कि, ब्रह्म सिवाय एक दो सत्य ब्रह्मगायत्री या साविची इत्यादि होंगे।

यही मङ्गलकारी ओंकार परब्रह्म को अष्ट प्रकृति या दश महाविद्या क्यों कहते हैं ? यही एक अक्षर ओंकार परब्रह्म ही आठ भाग बोध होते हैं ; यथा—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य्य नारायण वो तारागण, इन को अष्ट प्रकृति अष्ट सिद्धि, अष्ट विभूति या अष्टाक्षरो मन्त्र कहते और इन्हीं को शिव के अष्ट मूर्त्ति कहते हैं। यथा :—क्षितिमूर्त्तयनमः इत्यादि। और मेघ वो विद्युत लेकर इन्हीं को दश महाविद्या या काली माता प्रभृति नाना नाम कल्पित है। इन्हीं के द्वारा जीव समस्त के स्थूल सूक्ष्म शरीर इन्द्रियादि गठित हुई है, इस लिये इन्हीं का नाम "नवग्रह देवता"। "ग्रहरूपी जनार्द्दनः" अर्थात् विष्णु भगवान ग्रह देवतारूप से प्रकाशमान। ग्रह देवता अर्थ जिन के द्वारा समस्त प्रकार ग्रहण किया जाता या करते है अर्थात् जिन के द्वारा सृष्टि, पालन संहार मङ्गलामङ्गल वा समस्त फलाफल, सुख दुःख प्रभृति सब कार्य्य निष्पन्न होता है, इस लिये उन को ग्रह देवता कहते हैं। जीव समस्त के नवद्वार में जो ज्योतिः प्रकाश रहते हैं उन्हीं को नवग्रह कहते है। तिस्से जीव चेतन होकर ब्रह्माण्ड के सर्व्वप्रकार के नामरुप सुख दुःख प्रभृति ग्रहण करते हैं। जीव समस्त के मस्तक में नेत्रद्वार से सूर्य्यनारायण ग्रह देवता सत्यबोध करते और रुप ब्रह्माण्ड दर्शन कराते हैं वो करते हैं या जीव ग्रहण करते हैं। वही नेत्र के चेतन शक्ति जब सूर्य्य-नारायण ग्रह देवता सङ्कोच करते तब जीव ज्ञानातीत सुषुप्ति अवस्था में सोते रहते हैं और जीव का कोई बोधाबोध नहीं रहता

है कि कवे सोये थे वो कब जागेंगे, हम हैं या आप हैं। जब फिर चेतनाशक्ति प्रकाश करते हैं तब समस्त प्रकाश होता है। सोम ग्रह अर्थात् चन्द्रमा ज्योतिः देवता जीव समस्त के कण्ठभाग में मनद्वारा सङ्कल्प विकल्प उठाते हैं; मन कोई प्रकार थोरी अन्य मनस्क होने से कोई भावही समुझा नहीं जाता मन न रहने से जीव के उन्माद अवस्था होता है। सुषुप्ति अवस्था में मन न रहने से कोई भी ज्ञान नहीं रहता है। शुक्र या रेतः ग्रह देवताही से समस्त की उत्पत्ति है। शुक्र या रेतः ग्रहदेवता न रहने से जीव समस्त की उत्पत्ति हो नहीं सकी। शनि पृथिवी ग्रह देवता न रहने से अन्नादि उत्पन्न नहीं होगा, अन्नाभाव से जीव समस्त मर जायेंगे वो जीव समस्त के स्थूल शरीर हाड़ मास हो नहीं सकेगा, होना असम्भव है। परन्तु शनि, महाशक्ति का नाम है। ऐसेही अपरापर ग्रह देवता विषय में वस्तुदृष्टि से सारभाव समुझ लेंगे। एक कोई ग्रह देवता न रहने से, जीव समस्त के मृत्यु घटेगा। मङ्गलकारी ओंकार विराट परब्रह्म के अङ्ग प्रत्यङ्ग या शक्ति को ग्रह देवता कहते हैं। यही मङ्गलकारी ग्रह देवतारूप से जीव समस्त की उत्पत्ति, पालन, लय, ज्ञान, मुक्ति प्रभृति का समस्त कार्य्य होता है वो होगा। उन के सिवाय यही आकाश मन्दिर में द्वितीय कोई सत्य नहीं है कि, तिलमात्र अतिरिक्त करेंगे। ज्ञान दुरवीन से देखिये, सहज में ग्रह देवतागण जीव समस्त के अन्तर वो बाहर में एकही मङ्गल-कारी ओंकार विराट परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप चन्द्रमा सूर्य्यनारायण पूर्णरूप से भासमान होंगे। तारागण को जो भिन्न भिन्न बड़ा छोटा इत्यादिरूप से आकाश में देखते हैं ज्ञान दुरवीन से देख पड़ेगा कि, जीवही का नाम तारा है। बड़ा छोटा जो तारागण देखते हैं पृथिवी में जीव समस्त बड़ा, छोटा, गरीब, धनी, ज्ञानी, मूर्ख, राजा, प्रजा इत्यादि बड़ा, छोटा भाव समुझ लेंगे। जैसे

टूटे दर्पण में अपना ही मुख भिन्न भिन्न रूप देखा जाता है, परन्तु दर्पण में आप का भिन्न भिन्न मुख नहीं है, तैसेही अज्ञान दुरवीण से आकाश के ग्रह देवता को आपलोग भिन्न भिन्न देखते हैं। परन्तु ज्ञानदुरवीण से देखिये तो अन्तर में देखियेगा कि, सकल प्रकार स्थूल सूक्ष्म शरीर रूप वो शरीर के मङ्गलकारी एकही ओंकार विराट परब्रह्म ज्योतिःस्वरूप सूर्य्यनारायण सर्व्वदा मङ्गल साधन करेंगे। आपलोग वही मङ्गलकारी इष्टदेवता को अज्ञानवश न चिन्हकर आकाश में भिन्न भिन्न जड़ माया शत्रुज्ञान से उपहास करते हैं। इसलिये आपलोगों का अर्थात् जीवों का दुर्गति का सीमा नहीं है। यदि आपलोग अपना अपना मान, अपमान, जय, पराजय, सामाजिक मिथ्या स्वार्थ परित्याग करके बिचार पूर्व्वक सारभाव ग्रहण करिये यदि आपलोग ज्ञानदुरवीण से अन्तर बाहर में ग्रह देवता या एकमात्र मङ्गलकारी ओंकार विराट परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप चन्द्रमा सूर्य्यनारायण गुरु माता पिता आत्मा को यथार्थ से चिन्हकर इन का शरणागत होइये और क्षमाभिक्षा पूर्व्वक जीव समस्त के हित साधनरूप इन के प्रिय कार्य्य करिये तो यही मङ्गलकारी प्रसन्न होके आपलोगों का सकल प्रकार के अमङ्गल दूर करके मङ्गल बिधान करेंगे। यह ध्रुव सत्य सत्य जानेंगे। जैसे बहुत राजाओं में एक मनुष्य राजचक्रवर्त्ती रहते हैं तैसेही समस्त तारागण में राजारूपी परमेश्वर या चन्द्रमा सूर्य्य नारायण ज्योतिः स्वरूप ब्रह्माण्ड के राजचक्रवर्त्ती हैं, जीव समस्त के एकमात्र मङ्गलकारी हैं।

शास्त्र में इन को माया नाम से क्यों कल्पना किये हैं? एक सत्य स्वतः प्रकाश हैं, परब्रह्म जगत्स्वरूप भिन्न भिन्न नाना नामरूप से भासते हैं। पूर्णरूप से ब्रह्म नहीं भास वे अथवा नहीं बोध होके अज्ञान के वश तीन जुदा जुदाभाव से बोध होता है। यथा जीव, जगत्, ब्रह्म। यही तीन पृथक पृथक बोध होने को "माया"

कहते हैं। यही भिन्न भिन्न नामरूप भासते रहते भी यदि अभेद से पूर्णरूप परब्रह्मही भासते हैं तो वही जीव के पच्च में "माया" कोई कालही में नहीं है। इस लिये शास्त्र में कहते हैं ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या हैं ; अर्थात् जगत्, माया, संज्ञा या नाम कल्पना या भावनामात्र है ; वस्तु पच्च में केवलमात्र ब्रह्महीं समस्त भिन्न भिन्न नामरूप से भासते हैं। ज्ञानी के निकट ब्रह्म भासमान होते, वो अज्ञानी के निकट "माया" भासते हैं। ऐसे विचार पूर्व्वक नाना धर्म्म के नेतागण, स्त्री, पुरुष मनुष्यमात्रही, सारभाव अर्थात् वस्तु या परमात्मा ज्योतिः स्वरुप को धारण करिये। मिथ्या नाना नाम कल्पना त्याग करिये। जीव समस्त के एकमात्र धर्म्म या इष्ट-देवता मङ्गलकारी साकार निराकार एक अक्षर ओंकार विराट परब्रह्म ज्योतिःस्वरूप चन्द्रमा सूर्य्यनारायण जगत् के सकल प्रकार मित्र या मङ्गलकारी हैं। इन के सिवाय द्वितीय कोई मित्र या मङ्गलकारी ईश्वर प्रभृति नहीं हैं, होंगे नहीं, होने का सम्भावना भी नहीं है। यह ध्रुव सत्य सत्य जानेंगे। निराकार साकार या मङ्गलकारी ओंकार विराट परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप चन्द्रमा सूर्य्य-नारायण माता पिता गुरु आत्मा सम्बन्ध में देश भाषा वो रूप उपाधिभेद से नाना नाम या नाना मन्त्र कल्पित है। यदि किसी के भी यही भिन्न भिन्न मन्त्रादि में कल्पित एक मंत्र के सारभाव अर्थात् वस्तुज्ञान होता तो उन का मङ्गलकारीज्योतिः स्वरूप में निष्ठा भक्ति होता और भिन्न भिन्न कल्पित मंत्र के आडम्बर का प्रयोजन नहीं रहता ; केवलमात्र एक अक्षर प्रणव या "ओंमहं" मंत्रमात्र जप वो ज्योतिः के शरणागत होने से, वो जगत् के हित साधन रूप उन के प्रिय कार्य्य करने से जीव सर्व्व प्रकार का शान्ति पाते हैं।

ओंकार मंत्र वो ह्रीं श्रीं क्लीं क्लौं कं इत्यादि मंत्र के मध्य में केवल एक अक्षर ओंकार मंत्र के या ह्रीं श्रीं इत्यादि के मध्य में

एक के भी अर्थ समुझने से, भिन्न भिन्न मंत्र जपने का प्रयोजन नहीं रहता है। एक ओंकार मात्र का जप वो मङ्गलकारी चन्द्रमा सूर्य्यनारायण को पूर्णरूप से प्रणाम दण्डवत करने से अथवा जगत् के हित साधनरूप इन के प्रिय कार्य्य साधन करने से सर्व्व प्रकार व्यवहारिक वो पारमार्थिक सिद्धि लाभ होता है। मंत्र के वर्ण ऐसा चिन्हने होता है; यथा 'क्रीं' बीज मंत्र में 'क' अर्थ से प्राण वायुवीज 'र' अर्थ से अग्निवीज 'ई' अर्थ से चन्द्रमा ज्योतिः बीज वो '॰' अनुस्वार अर्थ से सूर्य्यनारायण बीज, यही चार अक्षर मिलके "क्रीं" शब्द होता है। माया बीज मंत्र "ह्रीं", 'ह' अर्थ शिव जीव समस्त "र" अर्थ अग्नि बीज "ई" अर्थ चन्द्रमा ज्योतिः बीज "॰" अनुस्वार अर्थ सूर्य्यनारायणबीज, यही चार वर्ण को माया बीज कहते हैं इत्यादि। मंत्र के अर्थ एक ओंकार मङ्गलकारी विराट परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप चन्द्रमा सूर्य्यनारायण-जगद्गुरु का नाममात्र है। कं क्लीं प्रभृति जितने मंत्र हो न क्यों, जो वर्ण में "॰" अनुस्वार हैं वह चन्द्रमा सूर्य्यनारायण हैं, और 'क, ख, ग, घ, ङ, इत्यादि जितने वर्ण है वह सब जीव समस्त के स्थूल सूक्ष्म शरीर है, तृणादि पर्य्यन्त ऐसे समुझ लेंगे।

यही मङ्गलकारी ओंकार विराट परब्रह्म को जगद्धात्री माता क्यों कहते हैं? इन्हीं अनादिकाल से चराचर स्त्री पुरुषात्मक जगत् प्रसवान्त में भी धारण किये रहते हैं, इस लिये इन को "जगद्धात्री" माता कहते हैं। यही जगद्धात्री या एकाक्षर ओंकार मङ्गलकारी विराट परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप चन्द्रमा सूर्य्यनारायण निराकार साकार पूर्णरूप से स्वतः प्रकाश विराजमान हैं। यही ज्योतिः स्वरूप चन्द्रमा सूर्य्यनारायण जीव समस्त के मस्तक के भेदस्पदन में प्रकाशमान रहते है। इन्हीं को ब्रह्म या परब्रह्म कहते हैं।

यही मङ्गलकारी ज्योतिः स्वरूप जीव समस्त के कण्ठ में रहने

से "शिव या जीव" कहते हैं। यही ज्योतिः स्वरूप जीव समस्त के हृदय में रहने से इन्हीं को "विष्णु भगवान" कहना होता है। नाभी में रहने से इनको "ब्रह्मा जगत पिता" कहते, वो मलद्वार में इन्हीं को "यम" कहते हैं। सूर्य्यनारायण के पुत्र यम हैं। "यम" अर्थ राजागण या अग्नि ब्रह्म यही ज्योतिः स्वरूप जीव समस्त को उपस्थ लिङ्ग में रहने से इन्हीं को गनेश कहते हैं। इसे "गण" या जीव समस्त उत्पन्न होता है।

मङ्गलकारी ओंकार विराट परब्रह्म को ज्योतिष शास्त्र में बारह राशि क्यों कहते हैं एकही ओंकार मङ्गलकारी के अङ्ग प्रत्यङ्ग या बारह कला से जीव समस्त के स्थूल सूक्ष्म शरीररूप बारह राशि उत्पन्न या तैयार हुई है। पांच कर्म्मेन्द्रिय पांच ज्ञानेन्द्रिय, मनवोबुद्धि। यही बारह लेकर एक मङ्गलकारी ओंकार विराट परब्रह्म हैं। उनके एकमात्र नेत्र सूर्य्यनारायण से जीव समस्त के कितने नेत्रराशि है उनका संख्या नहीं है। एक आकाश राशि से जीव समस्त के कितने कर्ण राशि, विराट ब्रह्म के प्राण राशि से जीव समस्त के असंख्य प्राण राशि जिस्के द्वारा जीव समस्त के श्वास प्रश्वास चलता है। राशि या ग्रहदेवता आप के अन्तर बाहर में न रहे यदि केवल मात्र उर्द्ध आकाश ही में रहें, तो आपके जो पुत्र कन्या उत्पन्न होता उनलोग का फलाफल मङ्गलामङ्गल कैसे ठिक घटता है? मंङ्गलकारी ओंकार विराट परब्रह्म के अङ्ग प्रत्यङ्ग शक्ति या देव देवी ग्रहदेवता से जीव समस्त के स्थूल सूक्ष्म शरीर इन्द्रियादि उत्पत्ति पालन वो स्थिति होता है ऐसेही होनेसे सुखदुःख फलाफल ठिक हो सक्ता है ऐसे सर्व्व विषय में समुझ लेंगे।

ओंकार मङ्गलकारी परब्रह्म को सूर्य्यनारायण या नारायण क्यों कहते ? स्वयं स्वतःप्रकाश चराचर स्त्रीपुरुष नरनारी रूप सजे है, इसलिये अनादि काल से इन्हीं "सूर्य्यनारायण" नाम से कल्पित हैं। इनके सिवाय द्वितीय कोई यह आकाशमन्दिर में नहीं हैं। जगत इनसे प्रकाशमान या इन्हीं के रूपमात्र हैं अर्थात् इन्हीं से ही भुचर खेचर जलचर स्त्री पुरुष जीव समस्त ग्रह उपग्रह नक्षत्रादि उत्पन्न हैं। ऐसे समुझने ही से "सौर जगत" नाम सार्थक होता है।

इनको दुर्गा काली क्यों कहते ? इन्हीं जीवमात्र के दुर्गति नाश करते, तिसलिये इन्हीं को "दुर्गा" कहना होता है। इन्हीं जीवमात्र को यम या कालभय से रक्षा करते तिसलिये इनके नाम "कालीमाता" कहना होता है।

सरस्वती इनके नाम क्यों है ? जीव समस्त के सूक्ष्म शरीर स्वरवर्ण है, वही सूक्ष्म शरीर स्वरवर्ण द्वारा व्यवहारिक वो पारमार्थिक सर्व्व प्रकार कार्य्य को उत्तम विधान करते हैं तिस लिये इन्हीं को "सरस्वती" कहते हैं। जब स्वरवर्ण सङ्कोच करते, तब जीव सोते रहते, स्थूल शरीर व्यञ्जन उच्चारित नहीं होता है। जब सरस्वती स्वरवर्ण सूक्ष्म शरीर जीव को प्रकाश जाग्रत करते, तब जीव स्थूल शरीर व्यञ्जन वर्ण के सहित संयुक्त होके व्यवहारिक वो पारमार्थिक कार्य्य करते हैं। सरस्वती जो वीणा वजाते, उसके अर्थ यह है कि, सरस्वती जो ज्योतिः हैं वही अन्तर से जब जीव समस्त के शरीर वीणा को जगाके अर्थात् चेतन करके वजाते, तब जीव समस्त नाना प्रकार के शब्द करते या वीणा वजता है। जब सरस्वती स्वरवर्ण शक्ति को

सङ्कोच करते, तब जीव समस्त का सुषुप्ति घटता तब स्थूल शरीर वीणा यन्त्र पड़ा रहता है।

मंङ्गलकारी ओंकार पुरुष को "श्यामसून्दर" क्यों कहते? जब चन्द्रमा सूर्य्यनारायण ज्योतिः स्वरूप जीव समस्त के माता पिता गुरु आत्मा प्रकाशमान ज्योतिः सुन्दर वो आकाश जल रूपी श्यमवर्ण हैं, इसलिय इन्को "श्यामसुन्दर" कहते हैं। जब ज्योतिः अप्रकाश होते, तब कृष्णवर्ण अन्धकार आकाशमय भासमान होते, तबही यही मङ्गलकारी माता पिता गुरु आत्मा को "शनि, काली, कृष्ण" प्रभृति वर्ण कहे जाते हैं। फिर प्रकाश होने से, "श्यामसुन्दर" प्रभृति नाम कल्पित होता है। सर्व्वनाम के विषय पूर्व्वोक्तरूप से सारभाव ग्रहण करेंगे। मङ्गलकारी ओंकार विराट परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप चन्द्रमा सूर्य्यनारायण गुरु माता पिता आत्मा जगतके हितार्थ में जितने प्रकार "कला" यां "अवतार" समय समय प्रकाश करके जगत के दुःख निवारण करते वेतने ही इन्को देवदेवी, ऋषि, मुनि, अवतार, ईश्वर परमेश्वर इत्यादि भिन्न भिन्न नाम कल्पित होता है। परन्तु इन्हीं ने निराकार साकार मङ्गलकारी ओंकार विराट परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप चन्द्रमा सूर्य्यनारायण अनादि काल से एकही भाव पूर्णरूप विराजमान हैं। इन्हीं वेद शास्त्रमें "सहस्रशीर्षा पुरुषः" इत्यादि मन्त्र से वर्णित हैं। इन्हीं के सम्बन्ध वेदमें वर्णन हुई है कि "चन्द्रमा मनसो जात चक्षोः सूर्य्योह जायत"।

ॐ शान्तिः। ॐ शान्तिः॥ ॐ शान्तिः॥

ब्रह्मगायत्री के आवाहन मन्त्र।

"ओं आयाहि वरदे देवी त्र्यचरे ब्रह्मवादिनी।
गायत्री छन्दसां मातः ब्रह्मयोनि नमोऽस्तुते॥"

आवाहन मन्त्र के अर्थ।

वेद शास्त्र में ओंकार के रूप "ॐ" इस प्रकार देखाने का अर्थ क्या है? निराकार ब्रह्म की रूप नही है वेद मे निराकार ओंकार की रूप वर्णन करने का प्रयोजन नहीं है। जब निराकार परब्रह्म साकार जगतरूप से अर्थात् विराटरूप से विस्तार होते हैं, तब उनका नाम ओंकार बोल कर शास्त्र में ऋषि, मुनिगण कल्पना करते हैं। यथा:—अ, उ, म, अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर। यहो तिन अक्षर योग से ओंकार अक्षर हुई है अर्थात समस्त चराचर स्त्री पुरुष को लेकर विराट परब्रह्म का नाम ओंकार हुई है। उसी ओंकार ब्रह्म के उपर में जो चन्द्रविन्दु लिखा हैं, इस के अर्थ यह है कि जीव समस्त के मस्तक के भितर वो वाहर आकाश में जो नामरूप ज्योतिः हैं अर्थात् तेजोरूप सूर्य्यनारायण हो वह विन्दु हैं, आर्द्धमात्रा चन्द्रमा ज्योतिः जो चराचर के कण्ठभाग में विराज करते हैं। "ओ" के अर्थ ज्ञानेन्द्रिय वो कर्म्मेन्द्रिय प्रभृति जो है समस्त लेकर विराट ब्रह्म का रूप जानेंगे। "ओं आयाहि वरदेदेवी" इस के अर्थ यह है कि ओंकार प्रणव ब्रह्म जगत् स्वरूप विराट जगतजननी रूप से विराज करते हैं। जब मनुष्यलोग व्यवहारिक वो पारमार्थिक कार्य्य करने में

उपस्थित होंगे । तिस समय प्रथमही इस मन्त्र को बोल कर जगत जननी जगतपिता ज्योतिः स्वरूप को आवाहन करके कार्य्य निष्पन्न करेंगे। "आयाहि" के अर्थ आगमन करिये। "वरदेदेवी" के अर्थ आप एकमात्र वरदायिनी अर्थात् वरके देने वाली हैं, आप वरदान करने से दूसरा ऐसा कोई नहीं हैं जो खण्डन कर सके। 'ओं आयाहि वरदेदेवी" इसके अर्थ यह है कि हे जगत जननी आप आगमन करके हमारे हृदय में वास करिये। "त्र्यचर" के अर्थ, हे माता पिता आप तिन अचर अ, उ, म अर्थात् सत्व: रज: तमो गुणमय जगत भाव से विराजमान हैं। तिन अचर अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर अ, उ, म, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य्यनारायण, कारण, सूक्ष्म वो स्थूल। "ब्रह्मवादिनी" अर्थात् आप ही ब्रह्म हैं, ब्रह्म को प्रतिपादन करिये। "छन्द सामातः" आप गायत्री जो विराट रूप शरीर धारण किये हैं आप सत्व: रज: तमः त्रिगुणमयी जगत माया से त्रान करिये। "ब्रह्मयोनि नमोऽस्तुते" अर्थात् हे मात: आप से जगत उत्पन्न हुई है, वो आप ही में स्थित हैं आप को नमस्कार करते हैं। यही जो कार्य्य करने में नियुक्त हुये हैं, तिस में जैसा कोई विघ्न न घटे, उत्तमरूप से निष्पन्न होये।

ब्रह्मगायत्री।

ओं भुः, ओं भुवः, ओं स्वः, ओं महः,
ओं जनः ओं तपः, ओं सत्यं।

ओं तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियोयोनः प्रचोदयात् ॥

ओं आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म भुः भुवःसरों ।

ब्रह्मगायत्री के अर्थ ।

पण्डित लोग ब्रह्मगायत्री के अर्थ नानाप्रकार करते हैं, परन्तु जिन लोग अर्थ करते हैं वह वस्तु कहां है तिन का ठेकाना नहीं है। इहां पर गम्भीर वो शान्तभाव से ब्रह्मगायत्री के अर्थ सत्तेप से ग्रहण करेंगे अर्थात् ब्रह्म वस्तु के उपर लक्ष्य रखेंगे। "ओं भुः, ओं भुवः, ओं स्वः, ओं महः, ओं जनः, ओं तपः, ओं सत्यं" इस्को अर्थ पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा वो सूर्य्य-नारायण। यही ओंकार विराट ब्रह्म को शास्त्र में सावित्री जगत जननी कहते हैं। 'ओं भुर्भुवस्वः' याने भूर्लोक, अन्तरीक्ष-लोक, स्वर्लोक। भूर्लोक पृथिवी को कहते हैं, अन्तरीक्षलोक मध्यस्थान को कहते हैं, स्वर्लोक स्वर्ग को कहते हैं। परन्तु इस के सार अर्थ भूर्लोक नाभी में जठराग्नि रूप ज्योतिः, अन्तरीक्ष-लोक हृदय में प्राणवायु रूप चन्द्रमा ज्योतिः, स्वर्लोक मस्तक में ज्योतिःस्वरूप सूर्य्यनारायण। यही तिन लोक को तिन रूप है। यही तिन लोक के ज्योतिः को प्रेम भक्ति के साथ एक अखण्डा-कार पूर्णरूप ध्यान करनेसे पूर्ण परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप अखण्डा-कार जीवात्मा परमात्मा अभिन्न रूप से भासेंगे, और कोई विषय में भ्रम न रहेगी। 'तत् सवितुर्वरेण्यम्' 'तत्' के अर्थ ईश्वर 'सवितः' याने जगत प्रसविता, अर्थात् सृष्टीकर्त्ता सूर्य्यनारायण

हैं 'वरेण्यम् अर्थ श्रेष्ठ हैं। 'भर्गो देवस्य' अर्थात् सूर्य्यनारायण के तेज वही देव हैं। 'धीमहि' 'धी अर्थात् बुद्धि वो 'धियोयोनः' प्रचोदयात्' ईश्वर अर्थात् सूर्य्यनारायण अन्तर से बुद्धि प्रेरण करते हैं। प्रत्येक नर नारी भक्ति पूर्व्वक चन्द्रमा सूर्य्यनारायण ज्योतिः के सम्मुख हात जोर करके प्रार्थना करेंगे, कि, हे भर्गो देवस्य! हे देव ज्योतिःस्वरूप जगन्माता जगतपिता जगद्गुरु जगदात्मा! मेरे बुद्धिको अन्तर से प्रेरण करके सत्य तत्त्वों मे लगाइये जिस से व्यवहारिक वो पारमार्थिक कार्य्य में उत्तमरूप से समुझके निष्पन्नकर सकें। जिस से ज्ञान पाकर मुक्तस्वरूप परमानन्द में परिवारलोगों को लेकर आनन्दरूप से रह सकें।

"ओं आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्म ओंकार" ब्रह्म, आपः अर्थ जल, और ज्योतिः स्वरूप अमृतरूप अखण्डाकार, पूर्णरूप से विराजमान हैं। निराकार, साकार पूर्णपरब्रह्म ज्योतिः स्वरूप को श्रद्धा भक्तिपूर्व्वक मनुष्यलोगों का उपासना करना उचित है। तो सकल प्रकार साधन होगा। निराकार परमात्मा अन्तर्यामी दृष्ट नहीं होंते मन वाणी के अतीत वो इन्द्रियों की अगोचर हैं, और वही निराकार हो करभी साकार जगत विराट प्रत्यक्ष ज्योतिः स्वरूप से विराजमान हैं। यही ज्योतिः स्वरूप चन्द्रमा, सूर्य्यनारायण परमात्मा को प्रातः वो सायंकाल में भक्तिपूर्व्वक प्रत्येक नर नारी प्रणाम करेंगे और अपना, परमात्मा और ओंकार मन्त्र को एकही सत्यजान कर वही चन्द्रमा सूर्य्यनारायण तेजोमयको धारण करेंगे।

पहिलेही कहा हुआ है कि, एक अक्षर ओंकार प्रणव के मूल पूर्णपरब्रह्म ज्योतिःस्वरूप सूर्य्यनारायण हैं। अधिक मन्त्र

के आड़म्बर में समय नष्ट करने का प्रयोजन नही है, इनही से सहज में सर्व्व कार्य्य उद्धार होगा।

जिन के भक्ति श्रद्धा हैं वह जितने इच्छा हो ओंकार जप करेंगे दिन या रात में, चलते, बैठते, सोते, सकल समय वो सकल अवस्था में जप करेंगे, तिस में कोई शुचि, अशुचि सख्या प्रभृति विधि निषेध नही है। पूर्णपरब्रह्म ज्योतिः स्वरूप गुरु इष्टदेवता को उपासना वो भक्ति करने में कोई समय असमय नहीं है जब आपलोगों के अन्तर में भक्ति उदय होगा, उसी समय में भक्तिपूर्व्वक उपासना करेंगे तिस में कोई चिन्ता नहीं हैं, उत्तमही होगा। जिनको ओंकार मन्त्र जप करनेका इच्छा हो वह मुख बन्ध करके 'ओं अः ओं' ऐसेही जप करेंगे। और जिनको पूर्ण परब्रह्म को गुरुभाव से भक्ति पूर्व्वक जप करने का इच्छा होगा वह उत्तम रूपसे 'ओं सत्‌गुरु', 'ओं सत्‌गुरु' बोलकर जप करेंगे।

'ओं सत्‌गुरु' जप करने का अर्थ यह है कि पूर्णपरब्रह्म ज्योतिःस्वरूप ही के नाम ओंकार मन्त्र है। वही सत्य हैं, और वही सर्व्व के गुरु, हैं, इस लिये 'ओं सत्‌गुरु' बोलकर जप करना होता है। पूर्णपरब्रह्म ज्योतिःस्वरूप गुरुके रूप चन्द्रमा सूर्य्य-नारयण ज्योतिःस्वरूपहैं। उन्हीं को निराकार, साकार अखण्डाकार से भक्तिपूर्व्वक प्रातः वो सायंकाल में पूर्ण रूप से प्रणाम वो ओंकार मन्त्र जप करेंगें तो आपलोगों का व्यवहारिक वो पारमार्थिक उभय कार्य्य उत्तम रूप से सिद्ध होगा। और मन भी शान्ति पायेंगे। जो मनुष्य भक्तिपूर्व्वक ऐसे कार्य्यको करेंगे, अर्थात् पूर्णब्रह्म ज्योतिःस्वरूप चन्द्रमा सूर्य्यनारायण के

सम्मुख श्रद्धा भक्तिपूर्व्वक प्रणाम करेंगे, वो ओंकार मन्त्र जप करेंगे, उनको और कोई मन्त्र अथवा गुरु के द्वारा कर्ण में मन्त्र लेना नहीं होगा। कारण पूर्णपरब्रह्म ज्योतिःस्वरूप आपलोगों के अन्तर से प्रेरणा करके ज्ञान देकर मुक्तस्वरूप रखेंगे। यह सत्य ! सत्य ! सत्यही कह कर जानेंगे, वृथा इष्टदेवतायों से विमुख होकर भ्रम में पतित न होइये।

ओं शान्तिः। ओं शान्तिः। ओं शान्तिः।

षटचक्र भेद।

मनुष्यलोग वस्तु वोध न करके अज्ञान वश होकर षटचक्र लेकर अनर्थक नाना प्रकार कष्ट भोग करते हैं, षटचक्र जिसको कहते हैं वह वस्तुयों पर कोई भी दृष्टि नहीं रखते। जो षट-चक्र विराट ब्रह्म में हैं। वही षटचक्र आपलोगों में भी हैं। विराट ब्रह्म के पृथिवी चक्र है, आपलोगों के मध्य में अस्थि मांस चक्र हैं। विराट ब्रह्म के जलचक्र है, आपलोगों में रक्त रस नाड़ी चक्र है। विराट ब्रह्म के अग्नि चक्र हैं, आपलोगों के मध्य में अग्नि द्वारा क्षुधा लगती हैं, आहार करते हैं वो अन्न परिपाक होता है, वो वाक्य वोलते हैं। विराट ब्रह्म के वायुचक्र है आपलोगों के मध्यमें नासिकाद्वार से श्वास प्रश्वास चलती है। विराट ब्रह्म के आकाश चक्र है,आपलोगों के अन्तर में आकाश द्वारा कर्णद्वार से श्रवण करते हैं। विराट ब्रह्म के चन्द्रमा ज्योतिःचक्र जो आकाश में देखते हैं वही चन्द्रमा

ज्योति: चक्र द्वारा आपलोग भितर में आपलोगों के स्वरूप से बोधाबोध करते हैं कि "यह हमरा वह तुमारा वो नानाप्रकार सङ्कल्प वो विकल्प उदय होता है। मनदूसरे तरफ रहने से कोई भावही समुझा नहीं जाता। यही मन चन्द्रमा ज्योति: पर्य्यन्त षटचक्र जानेंगे। और विन्दु सूर्य्यनारायण मस्तक में ज्योति: या ज्ञानरूप से प्रकाशमान षट चक्र भेद करके सहस्र दल में पहुचने से अर्थात् अज्ञान लय होकर ज्ञान उदय होनेसे अपने मस्तक में जीव ब्रह्म अभेद से दर्शन करके जीव मुक्त स्वरूप होते हैं। पञ्चतत्व चन्द्रमा ज्योति: लेकर जिन्को अज्ञान के वशहोकर ईश्वर से पृथक षटचक्र बोध होता है, ज्ञान होनेसे उन्को और पृथक बोध नहीं होता, केवल एकमात्र सर्व्वशक्तिमान् पूर्ण परब्रह्म ही कारण सूक्ष्म स्थूल रूपसे भासमान होते हैं। इसी प्रकार बोध होने को षटचक्र भेद जानेंगें। मुलाधर चक्र चार दल विशिष्ट है, यह चार अन्त:करण यथा:—मन:, बुद्धि, चित्त, अहंकार। स्वाधिष्ठान चक्र छय दलविशिष्ट छय रिपु यथा:—काम, क्रोध, मोह, मद, मात्सर्य्य। मनिपुर चक्र दशदल विशिष्ठ है दश इन्द्रियों के दशगुण अनाहद चक्र वारदल विशिष्ट है दश इन्द्रिय वो मन बुद्धि। विशुद्ध चक्र षोलदल विशिष्ट है दश इन्द्रिय चार अन्त:करण विद्या अविद्या। आज्ञाचक्र द्विदल है प्रकृति पुरुष विराट ब्रह्म हैं। सहस्रदल मस्तक में परमात्मा के असीम अनन्त अखण्ड महाशक्ति को पूर्णभाव को जानेंगे। यही विराट भगवान ज्योति: स्वरूप सिवाये षटचक्र कोई पृथक वस्तु नहीं है।

मन्त्र जप।

जप करने के पूर्व्व में मुखबन्ध करके नासिका द्वार से "ओं" शब्द मन में उच्चारण करते श्वास टान लेना होता है। तिस के बाद "ओं" वा "ओं सत्गुरु" यही मन्त्र वे श्वास प्रश्वास के संग मुख बन्ध करके जप करना होता है। ऐसे एक वा अनेक बार जप करने से जैसे श्वास बन्ध हो जाये वैसाहो फिर पूर्व्व के तरह श्वास खीच लेना होता है और फिर पूर्व्वके तरह मन्त्र जप करना होता है। जवतक इच्छा हो तवतक कर सक्ते हैं, और जो अवस्था में वा जो स्थान ही में होवे न क्यों इच्छा होने से जप करेंगे। इस्के लिये निर्द्दिष्ट प्रकार के आसन या स्थान; समय वा असमय, शुचि अशुचि कुछ भी नहीं है। मन में करिये कि, एक मनुष्य मृत्युशय्या पर मल मूत्र के बीच अर्थात अशुचि पदार्थ के बीच में शयन किये हैं। तिस समय वही उपस्थित मृत्युके समय जो अवस्था में हैं वह शुचि या अशुचि होये वही अवस्था में, प्रेम वो भक्ति के सहित यदि पूर्ण परब्रह्म ज्योतिः स्वरूप के नाम ओंकार मन्त्र जप करने में इच्छा करे और अशुचि आसन पर सोंये हैं कहकर यदि उस्के उक्त रूप जप करना निषिद्ध होता है और उस्के वाद यदि उनका मृत्यु होय तव वही मनुष्य के प्राण आनन्द ज्ञान स्वरूप से नहीं जाता है, उनको निरानन्द में मरने होता है। यह कभी ही आनन्दमय पूर्णपरब्रह्म ज्योतिःस्वरूप जो परम न्यायवान परम दयालु हैं उनकी अज्ञा हो नहीं सक्ता है। और देखिय अशुचि हो में शुचि होना प्रयोजन है। अशुचि अवस्था में श्रेष्ठ कार्य्य और

भगवान के नाम लेनेसे शुचि होता है न तो अशुचि अवस्था में मन को और भी असत् कार्य्य में लगाना उचित नहीं है। जैसे मयला कपड़ा साफ करना उचित है, उस को न धोकर उस्में और भो मयला लगाना उचित नहीं है। अतएव बैठे २ शोते शोते, चलते चलते, फिरते फिरते, खाते खाते, पीते वो खड़े जिस अवस्था में वा जो समय में होंये न क्यों हृदय में भक्ति या प्रेम उदय होनेसे पूर्व्व कहे अनुसार से मन मनमें जप करना विधि है। सभी अपने अपने परिवारों को सत् उपदेश देंगे।

ऐसेही जप करते करते जब आप का स्वरूप ज्ञान होगा, तब ओंकार मन्त्र वो ब्रह्मगायत्री के जप का प्रयोजन नहीं रहेगा। जैसे जल पीने के उपरान्त प्यास निवृत्त होता है और जल पिने में जो प्रवृत्ति अथवा प्रयोजन नहीं रहता है वह स्वयँ हो समुझ सक्ते हैं। तैसेही पूर्णरूप स्वरूप ज्ञान होने से जप करने का प्रयोजन नहीं रहता है। यहभी स्वयं जान सकेंगे।

यद्यपि कोई स्वरूप बोध विहीन शास्त्रज्ञ मनुष्य वोले कि पूर्ण परब्रह्म ज्योति:स्वरूप ईश्वर गुरु को उपासना वो भक्ति किस लिये करेंगे, वह तो समस्त ही में समभाव से परिपूर्ण हैं? इस प्रश्न के उत्तर यह है कि माता पिता ही से पुत्र कन्या उत्पन्न होते हैं, और माता पिता कारण स्वरूप रहते हैं। और स्वरूप पक्ष में पुत्र कन्या माता पिता हो का स्वरूप हैं, जैसे श्रुति में लिखा है कि,—

———

"आत्मा वै जायते पुत्रः"

अर्थात् अपने (माता पिता का) आत्मा ही पुत्र हैं। अतएव माता पिता वो पुत्र में कुछ भेद नहीं है। परन्तु स्वरूप में एक होने से भी माता पिता को श्रद्धा भक्ति करना और उनलोगों का आज्ञा पालन करना सुपात्र पुत्र कन्या का उचित है। तैसेही पूर्ण परब्रह्म ज्योतिःस्वरूप विराट चन्द्रमा सूर्य्यनारायण जगतके माता पिता हैं और आप लोगों पुत्र कन्या स्वरूप में एकहोने से भी उन को श्रद्धा भक्ति वो नमस्कार करना वो उनका आज्ञा पालन करना मनुष्य का उचित है।

जब तक मनुष्य नदी पार नहीं होते, तवतक पर्य्यन्त नाव का प्रयोजन है। नदी पार होने के उपरान्त और नाव का प्रयोजन नहीं होता है। तैसेही अज्ञान माया नदी पार होने में ज्ञान रूप नाव वो पूर्ण परब्रह्म ज्योतिःस्वरूप गुरुरूपी मल्लाह का प्रयोजन है। अज्ञानता दूर होने से और कुछ भी प्रयोजन नहीं रहता है।

ओंकार मन्त्र जपने का संख्या।

कोई कोई मनमें सन्देह करसक्ते हैं कि, कितने मन्त्र जपने से मन्त्रसिद्ध होगा। ओंकार मन्त्र जपने के संख्या यह दृष्टान्त के द्वारा भाव समुझ लेंगे। जैसे माता पिता के नाम दशवार पुकारने का विधि है। परन्तु पुत्र कन्या उन को दशवार नाम धरके पुकारें, यदि वह दशवार पुकारने में न

वोलें, तव फिर क्या और पुकारे नहीं जायेंगे? हां नहीं, दशवार पुकारने से किसी कारण वश न वोलें, तो विश वा हजार वार पुकारने होगा। जवतक वह उत्तर न देंगे, तवतक उन को पुकारने पड़ेगा। यदि वह पुत्र कन्याओं पर क्रपा करके एक वार पुकारने से उत्तर दें तो दश वा हजारवार पुकारने का क्या प्रयोजन है? और मन्त्र सिद्ध होने का अर्थ यह है कि माता पिता के नाम धरके पुत्र कन्या पुकारते हैं, जवतक वह उत्तर नहीं देते, तवतक मन्त्रसिद्ध नहीं होता है। और जव वह प्रसन्न होकर उत्तर देते हैं, तव मन्त्र सिद्ध होता है। मन्त्र सिद्ध असिद्ध माता पिताओंपर निर्भर कर्त्ता हैं। माता पितारूपी पूर्ण परब्रह्म ज्योतिःस्वरूप विराट भगवान हैं। नाम उनका "ओंकार वा ओं सतुगुरु" यही मन्त्र को श्रद्धा भक्ति पूर्व्वक १० वा १०८ अथवा हजार वा लाख वार जप करें, यदि दया करके दर्शन न दें वा कार्य्य सिद्ध न करें, तो क्या और जप करने नहीं होगा? उनकी क्रपा उपर निर्भर कर्ता हैं। यदि एक वार मन्त्र श्रद्धा भक्ति पूर्व्वक जप करें और वह क्रपा करके प्रगट होंये वा कार्य्य सिद्ध करें, तो अनेक संख्य नाम धरके वा मन्त्र जपने का क्या प्रयोजन है? और आपलोगों किसी प्रकार का चिन्ता न करके उनको श्रद्धा भक्ति पूर्व्वक उपासना वो आज्ञा पालन करिये, वह दयामय दया कर के आपलोगों का सकल मनोरथ सिद्ध करेंगे। अतएव जितने मन्त्र वेद शास्त्र में है, वा जपने का संख्या वा विधि है, वह सव केवल मुनि ऋषि वो मनुष्य-लोगों का कल्पित मात्र है। हे पाठकगण! अनर्थक भ्रम में

पतित होकर समय नष्ट न करके भगवान परमात्मा के निकट शरणागत होइये, वह आपलोगों का सकल प्रकार कार्य्य को सिद्ध करेंगे। इन के सिवाये द्वितीय कोई भी नहीं हैं जो अमंगल दूर करके मङ्गल स्थापन करें, यह सत्य! सत्य! सत्य ही जानना।

प्राणायाम।

प्राणायाम विषय पुराणों में लिखे हैं कि प्राणायाम करने के समय रेचक, पूरक, और कुम्भक करने होता हैं। आप नासिका से जो प्राण वायु को बाहर से अन्तर में खिचते हैं, उसी का नाम पूरक और वही प्राण वायु को आप जबतक आपके मस्तक में रोकी रहती है, उसी अवस्था को कुम्भक कहते है, और उसी वायु को नासिका द्वार से जब बाहर में त्याग करेंगे उसी को रेचक कहते हैं।

रेचक वो पूरक करने के समय ओंकार मन्त्र जप करने का उपदेश प्रचलित है। जब पुरक करने होता, तब ओंकार (४) चार वार जप करते करते वायु ग्रहण करने होता है, वो जब रेचक करने होता, तब (८) आठ वार मन्त्र जपते जपते वायु को अन्तर से बाहर में त्याग करने होता है; और कुम्भक के समय मन्त्र (१६) षोलह वार जप करने होता है। और पुरक में (१६) षोलह वार जप करने से, रेचक में (३२) बत्रिश वार, वो कुम्भक में (६४) चौषठ वार मन्त्र जप करने होता है। पुरक

के दुना रेचक वो रेचक के दुना कुम्भक। परन्तु कुम्भक के समय जप नहीं होता है। जीव तत्व भाव के उपर रहते हैं। गणती के उपर दृष्टि नहीं रखेंगे। अराम से जो जितने संख्या सके वह उतने ही मन्त्र जप करेंगे। रेचक, पूरक वो कुम्भक जिन को इच्छा हो करिये अच्छाही हैं। परन्तु प्रकृतपक्ष में रेचक, पूरक वो कुम्भक के अर्थ यह है कि, आप जो आप के मन का वृत्ति वाहर में विस्तारित वो चञ्चल हुई है—उसी अवस्था को रेचक जानेंगे। जव आप आपने मन को वाहर से सङ्कोच करके अन्तर में अन्तर्यामी से अर्थात् पूर्णपरब्रह्म ज्योति:स्वरूप गुरु से संयुक्त करेंगे। उसी अवस्था का नाम पूरक जानेंगे, वो जव आप परमात्माके साथ अभेद से मुक्तस्वरूप होंगे, उसी अवस्था को कुम्भक जानेंगे अर्थात् अज्ञान अवस्था का नाम रेचक वो ज्ञान अवस्था का नाम पूरक, वो स्वरूप अवस्था को कुम्भक जानेंगे; स्वप्नावस्था रेचक, जाग्रत अवस्था पूरक वो सुषुप्ति अवस्था को कुम्भक जानेंगे। जहां पर आप वो आप के मन वो मन के वृत्ति कारण में स्थित होता है उसी अवस्था को कुम्भक जानेंगे। और कारण परब्रह्म अपने इच्छानुसार जो निराकार से साकार विराट स्वरूप वहुनामरूप विस्तार होते— इसी अवस्था को रेचक जानेंगे वो जव परमात्मा इस जगत नामरूप को सङ्कोच करके अपना स्वरूप कारण में लय करने में प्रवृत्त होते, उसी अवस्था को पूरक जानेंगे, वो जव स्वयं कारण से कारण में रहते, उसी अवस्था को कुम्भक जानेंगे। जिस को कुम्भक कहते, उसी को समाधि कहते हैं। चन्द्रमा-रूप प्रकाशको रेचक, सूर्य्यनारायण प्रकाशको पूरक, और अमा-

वस्था में चन्द्रमा सूर्य्यनारायण के प्रकाश निराकार होकर जो आकाशमय अन्धकाररूप रहते हैं उसी को कुम्भक जानेंगें।

आसन प्रकरण।

प्राणायाम करने के समय नानाप्रकार आसन करने होता है यथा पद्मासन, ब्रह्मासन, सिद्धासन, स्थिरासन, गरुड़ासन, काकासन, प्रभृति चौराशी प्रकार आसन कल्पित हुई है। परन्तु आसन किस को कहते हैं ? पूर्णपरब्रह्म ज्योतिःस्वरूप आत्मा गुरु वही जीव को मूल आसन हैं। यथार्थ में इन के शिवाय और कोई आसन नहीं हैं। जिन के उपर मनकी स्थिरता होता है ; उनहीं का नाम आसन। क्योंकि मैं यदि चौराशी आसन करके नेत्र बन्ध किये बैठे रहूं, और मन अन्तर से बाहर तरफ विषये भोग में आसक्त वो चञ्चल होके भ्रमण करें, तो हमारा आसन कहां रहा ? बाहर में देखपरते है कि एक बड़ा महात्मा सिद्धासन पर बैठे हैं, परन्तु अन्तर में जो कितने दूर चञ्चल हुई है वह कोई समुझ नही सक्ते हैं। और यदि कोई आसनों को न करें और नेत्र बन्ध न करें, बाहर में कोई आड़म्बर न करके अन्तर में अन्तर्यामी में अर्थात पूर्णपरब्रह्म ज्योतिःस्वरूप आत्मा गुरु में प्रेम भक्तिरूप आसन में आनन्द से बैठे, तो वही आसन ही सत्य आसन होगा या नही ? जो ज्ञानवान हैं वह उसी आसन ही को प्रकृत आसन जानें करते हैं।

चौराशी (८४) आसन का प्रकृत अर्थ यह है कि, जीवमात्र ही अपने अपने अङ्गादि की आकृति अनुसार जैसे अराम से बैठ सके तैसे ही व हो जीव के पक्षमें यथार्थ आसन है। मनुष्यमात्रही जो जैसा बैठके अराम आनन्द से व्यवहारिक वो पारमार्थिक कार्य्य सम्पन्न कर सक्ते हैं, वह तैसे हो बैठ कर कार्य्य करेंगे, यही ईश्वर का विधि है। यदि मनुष्य के आसन पर पशु वा पक्षी बैठे तो उनलोग का कष्ट होगा। और पशु पक्षी के आसन में मनुष्य बैठे तो उनलोगो का काष्ट होगा। अतएव उनलोग जैसे बैठने से उनलोग का कष्ट न होये वही आसन ही उनलोगों का विधि है। पौरानिक चौराशी आसन मनुष्य के लिये नहीं है पशु, पक्षी खेचर भूचरादि समस्त जीव के लिये जो भिन्न निर्द्दिष्ट आसन है और उसी लिये ही आसन का इतना अधिकता है। मनुष्यके नाना कल्पित आसनादि की कोई प्रयोजन नहीं है। यदि प्रत्येक नरनारी पूर्णपरब्रह्म ज्योति:स्वरूप आत्मा गुरु में निष्ठा वो भक्ति रखें, और प्रात: वो सायंकाल में श्रद्धा भक्तिपूर्व्वक चन्द्रमा वो सूर्य्य नारायण ज्योति:स्वरूप आत्मा, माता, पिता, गुरु के सम्मुख नमस्कार, ध्यान धारणा करें और पूर्व्वलिखे मत ओंकार मन्त्र को जप करें तो उनलोगों को प्राणायाम वो आसनादि कुछ भी करने नहीं होगा, सहज में ज्ञान होकर मुक्तस्वरूप परमानन्द में आनन्दस्वरूप रहेंगे, त्रिताप वो वाप एकवार ही दूर हो जायगा।